ज्ञानामृत

सितम्बर, 1989 वर्ष 25 ❋ अंक 3 मूल्य 2.00

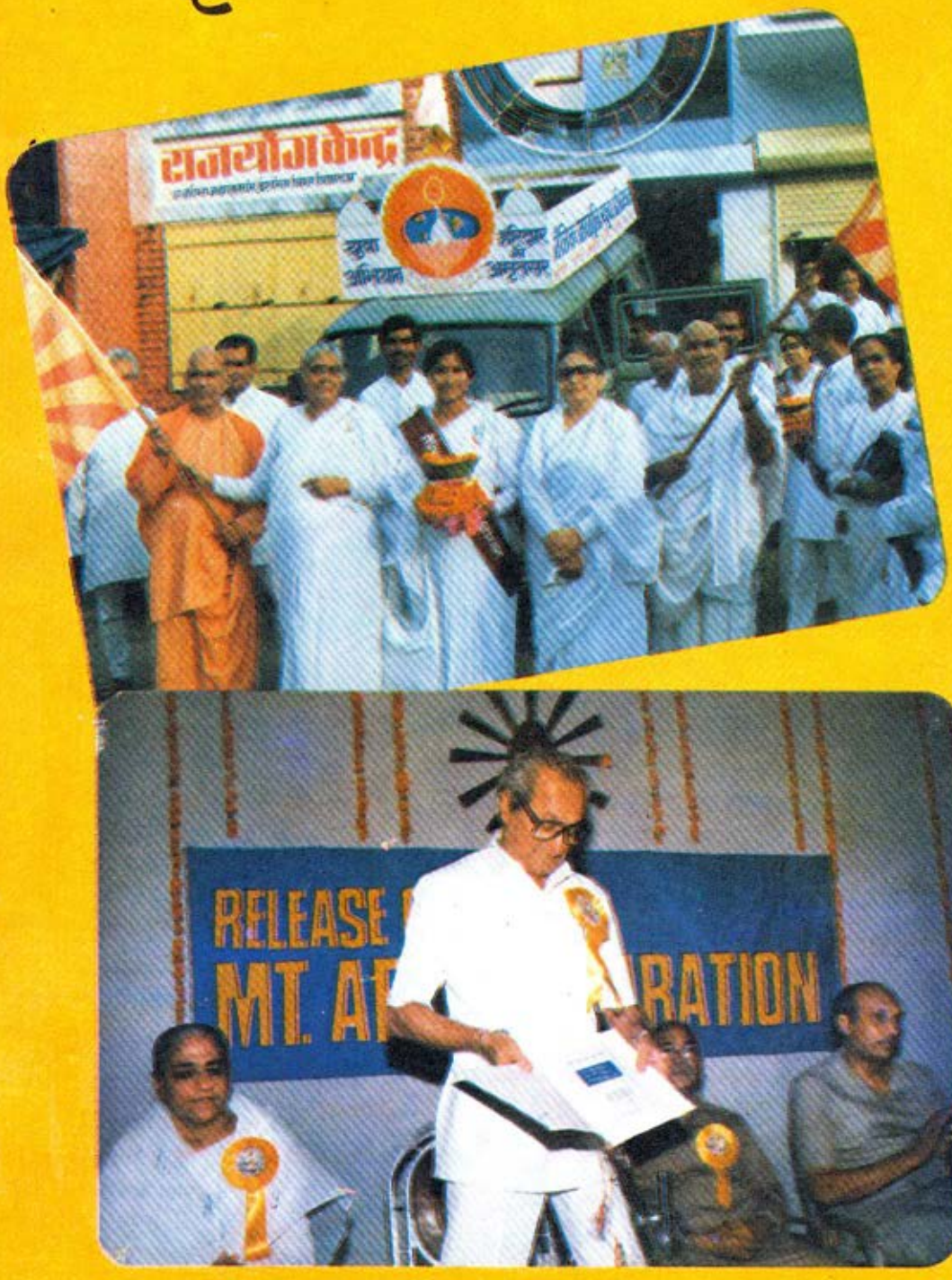

हरिद्वार से अमृतसर युवा अभियान का स्वामी डॉ श्याम सुन्दर दास जी, स्वामी माधवाचार्य जी, तथा ब्र० कु० दादी चन्द्रमणि जी शुभारम्भ करते हुए।

नई दिल्ली : देहली के उपराज्यपाल भ्राता रॉमेश भण्डारी जी आबू घोषणा पत्र की प्रति का विमोचन करते हुए।

नई दिल्ली : में महामहिम राष्ट्रपति भ्राता आर० वेकन्टरामन जी को ब्र० कु० राज स्नेह तथा पवित्रता की सूचक राखी बांधते हुए।

नई दिल्ली : ब्र० कु० आशा भारत के प्रधान मंत्री भ्राता राजीव गांधी जी को स्नेह, सहयोग तथा पवित्रता की सूचक राखी बांधने से पूर्व माऊण्ट आबू में पधारने का निमन्त्रण देते हुए।

नई दिल्ली : भारत के उपराष्ट्रपति भ्राता शंकरदयाल शर्मा जी को स्नेह की सूचक राखी बांधती हुई ब्र० कु० आशा जी।

काठमाण्डू : महामहिम मारीचमान सिंह श्रेष्ठा, नेपाल के प्रधानमन्त्री जी ब्र० कु० गीता से स्नेह सूचक राखी बंधवाने के पश्चात् प्रसाद स्वीकार करते हुए।

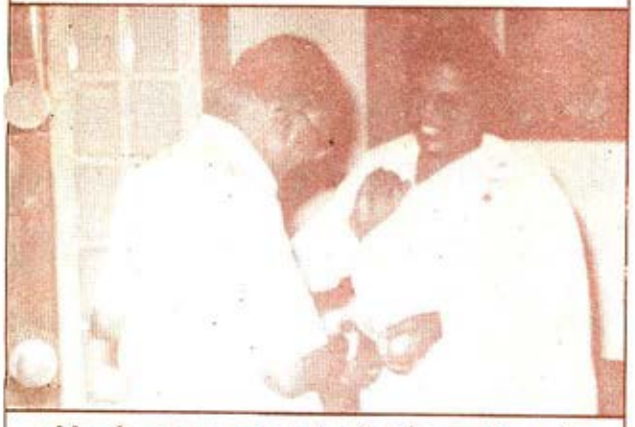

नई दिल्ली : ब्र० कु० आशा बी० सी० रे, न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय को राखी बांध रही हैं।

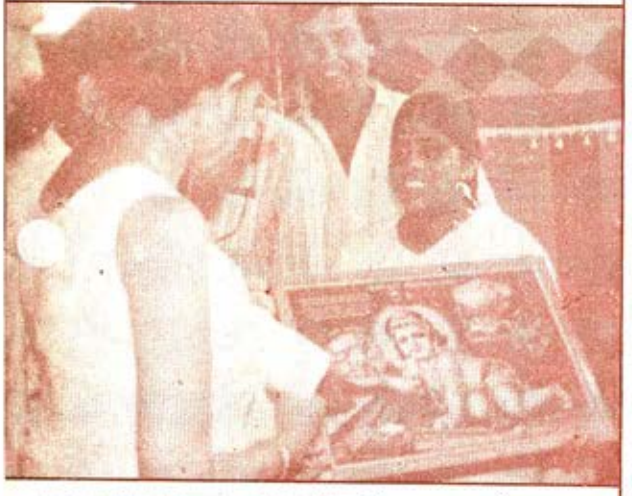

धार : ब्र० कु० सत्या, मध्य प्रदेश के राज्यपाल बहिन सरला ग्रेवाल को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए।

नई दिल्ली : प्रो० मधु दण्डवते तथा श्रीमति प्रमिला दण्डवते जी को राखी बांधनें के पश्चात् ब्र० कु० बहिनें उनसे ज्ञान वार्तालाप करते हुए।

गांधी नगर : गुजरात के राज्यपाल भ्राता आर० के० त्रिवेदी जी को राखी बांधती हुयी ब्र० कु० सरला बहिन

कलकत्ता : ब्र० कु० कानन भ्राता टी० वी० राजेश्वर, राज्यपाल प० बंगाल को राखी बांधते हुए।

नई दिल्ली भ्राता रामनिवास मिर्धा, भारत के कपड़ा केन्द्रीय मंत्री जी को ब्र० कु० लक्ष्मी राखी बांधती हुई।

Regd No. 10563/65-D, (E)—70

माउण्ट आबू : ओम शान्ति भवन में नैतिक जागृति युवा अभियान में भाग लेने वाले युवा भाइयों को सम्बोधित करते हुए राजस्थान विधान सभा अध्यक्ष भ्राता गिरिराज प्रसाद तिवारी जी।

माउण्ट आबू : में वृक्षारोपण अभियान का दृश्य। ब्र० कु० दादी प्रकाशमणि जी तथा अन्य ब्र० कु० भाई बहिनें ओरिया ग्राउण्ड पीस पार्क में वृक्षारोपण करते हुए।

1

थाना (बम्बई) सेवाकेंद्र द्वारा आयोजित "व्यक्तित्व विकास एवं नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर" के उद्घाटन समारोह में मोमबत्तियां जलाते हुए भ्राता नानजी भाई, डॉ. शशीकांत कर्णीक, उपकुलपति, बम्बई विद्यापीठ, प्रोफेसर बहन रूपा शाह, ब्र.कु. गोदावरी जी भी चित्र में हैं।

2

3

1. **चन्डीगढ़** : में आबू घोषणा-पत्र विमोचन दृश्य चित्र में (दाएं से) श्रीमति बिजमोहन समाज सेविका चन्डीगढ़, न्यायाधीश भ्राता एस० डी० बजाज, ब्र० कु० दादी चन्द्रमणि जी, भ्राता एच० के० खोसला, इन्जीनियर-इन-चीफ (आबपाशी) हरियाणा, ब्र० कु० प्रेम, भ्राता एच० एल० शर्मा, रजिस्ट्रार पंजाब युनिवर्सटी मोमबत्तियाँ प्रज्जवलित करते हुए।

2. **नई दिल्ली** : भारत के पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी को राखी बांधती हुई ब्र० कु० आशा जी।

3. **नई दिल्ली** : भारत के विदेश मंत्री भ्राता नरसिंहराव को राखी बांधने के पश्चात् अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान से परिचित कराती हुई आशा बहिन।

4. **कलकत्ता** : ब्र० कु० दादी निर्मल शांता जी पूर्व पी० डब्ल्यू० डी० मंत्री भ्राता जतन चक्रवर्ती जी को स्नेह सूचक राखी बांधते हुए।

अमृत-सूची

१.	हम गुणों के खरीदार हैं, हमारे जीवन-दर्शन में दुर्गण दर्शन नहीं (सम्पादकीय)	१
२.	सच्ची श्रीमद्भगवद् गीता ही सच्ची 'अमर-कथा' है	५
३.	अहम वहम और रहम	८
४.	परमात्मा का अस्तित्व और न्याय	९
५.	आध्यात्मिक और भौतिकता	१०
६.	वास्तविक गरीबी और इसका निवारण	१२
७.	व्यक्तित्व विकास एवं नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर	१३
८.	सचित्र समाचार	१५
९.	समस्याओं का समाधान—है बहुत आसान	२१
१०.	फूल-सा चेहरा और कमल-सा जीवन	२२
११.	गुडनाईट नहीं गुडमार्निंग!	२३
१२.	बराबरी या एकता	२५
१३.	उठो! सम्पूर्णता तुम्हारा आह्वान् कर रही है	२६
१४.	सर्वेभवन्तु सुखिनः	३०
१५.	सुखशान्ति की खोज	३२

सम्पादकीय

हम गुणों के ख़रीदार हैं

हमारे जीवन-दर्शन में दुर्गुण-दर्शन नहीं है

संसार में जब कोई व्यक्ति किन्हीं दूसरों के सम्पर्क में आता है तो न चाहते हुए भी दूसरों के गुण और दोष उसे दिखाई दे जाते हैं। विशेष तौर पर जिनके साथ उसका व्यवहार या व्यापार होता है, उनके गुण-दोष बार-बार उसके सामने आते हैं और वे उनसे सम्बन्धित उसकी पूर्व स्मृतियों को भी जागृत कर देते हैं। फिर, वर्तमान युग, जिसे 'कलियुग' अथवा 'अधम- युग' भी कहा गया है, में तो लोगों में अवगुण, दुर्गुण अथवा आसुरी गुण या तमोगुण ही के लक्षण अधिक हैं और दिव्य गुण, सतोगुण या मानवोचित गुण बहुत कम हैं और जो हैं वे भी प्रायः स्थायी और सुदृढ़ नहीं हैं, न ही वे अपने प्रभावशाली, निर्मल और अमिश्रित रूप में विद्यमान हैं। और, वे भी मनुष्य की बुराइयों के नीचे दबे होने के कारण कभी दिखाई देते हैं और कभी ओझल भी हो जाते हैं।

दिखने वाले दुर्गुणों को अनदेखा कैसे किया जाये?

अतः प्रश्न उठता है कि ऐसी परिस्थिति अथवा ऐसे वातावरण में, जबकि दुर्गण ही प्रधान तथा प्रत्यक्ष हैं, एक ऐसा व्यक्ति, जो स्वयं में दिव्य गुणों का उत्कर्ष चाहता हो और आसुरी गुणों के छींटों से बचकर रहना चाहता हो, क्या करे? वह अपनी आँखों को तथा अपने कानों और अपने विवेक को बन्दकर के तो चल नहीं सकता, न ही हाथ पर हाथ रख कर और सब-कुछ छोड़-छाड़ कर, दो दीवारों के बीच के किसी कोने में पालती मारकर बैठा रह सकता है। उसे अपने पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक या निजी कर्त्तव्यों को करने के लिये, अथवा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, कार्य तो करना ही पड़ता है और उसे उस कार्यार्थ दूसरों से सम्बन्ध-सम्पर्क में भी आना पड़ता है तथा संघर्ष में भी भाग लेना पड़ता है। अतः प्रश्न उठता है कि जबकि यह सत्य है कि हरेक में दुर्गुण-अवगुण हैं और वे उनके व्यवहार में साफ़ दिखते हैं तो फिर उन्हें अनदेखा कैसे किया जाय और उनके प्रभाव से अपने मन को सुरक्षित और अनाहत कैसे रखा जाये?

एक और बात यह भी है कि जिनमें हम बड़ी मात्रा में गुणों के निवास की ऊँची आशा करते हैं, उनमें भी यदि दुर्गुण पनप रहे हों तब तो उस अचम्भे की अवस्था में वे दुर्गुण और भी अधिक स्पष्ट दिखते हैं। दिखते ही नहीं अखरते भी हैं। अतः, तब तो उन्हें भुलाने, मन से मिटाने और आगे के लिये फिर से न देखने का पुरुषार्थ एक अच्छा-ख़ासा पुरुषार्थ हो जाता है। जैसे बार-बार हथौड़ी और छैनी से किसी पत्थर पर चोट करने से छैनी के कई बार उछल पड़ने के बावजूद भी अन्तोगत्वा पत्थर उससे छलनी हो ही जाता है, वैसे ही बार-बार किसी मनुष्य के दुर्गुण देखने से मन में उस दुर्गुण के छिद्र अथवा उनकी छाप पड़ने की संभावना बनी रहती है। अतः जब ऐसे लोगों में दुर्गुण दिखाई दे जायें, तब उन्हें कैसे भुलाया जाये?

इस पर भी जब हम ऐसा देख लेते हैं कि जिनसे हमें दिव्य गुणों की आशा थी, वे स्वयं भी दूसरों के दुर्गुण देखने में लगे हैं, मानो कि दुर्गुणों को इकट्ठा करना ही उनका धन्धा हो, तब मनुष्य सोचता है कि ऐसी हालत में क्या किया जाये?

जो हमारे गुणों को भी दुर्गुण मानें और तंग करें, उनके दुर्गण को कैसे न देखें?

पुनश्च, जब लोग हमारे दिव्य गुणों को भी दुर्गुण मानने लगें और जो दुर्गुण हम में नहीं हैं, अन्य लोगों के कहने पर, उनकी भी हममें वे विद्यमानता मानने लगें, या अपने अनुमान ही से हममें दोष देखने लगें, तब भी हम इस दुर्गुण को न देखें—इसका क्या उपाय है?

कुछ लोग हमारी भूल से नाराज़ हो जायें या हमारी

भूल न होने पर भी अपनी ईर्ष्या और द्वेष वृत्ति के कारण हमसे रुष्ट हुए रहें और वर्षों तक बदला चुकाने की भावना से ही हमसे व्यवहार करते रहें तब ऐसे लोगों के इस दोष से हम कैसे अपना दामन छुड़ाएँ अथवा साफ बनाये रखें? हम उनके इस दुर्गुण को कैसे न देखें?—ये भी तो पुरुषार्थी के लिये एक प्रश्न है।

यदि कुछ लोग हमारे पीछे ही पड़ जायें, हमारा पल्ला ही पकड़ लें और महीनों तथा वर्षों तक हमें सूली और काँटे चुभोने के कर्म करने की कोई सीमा भी निर्धारित न कर हमारे मन में वर्जित संकल्प पैदा करने के निमित्त बनें, उनके इस दुर्गुण को भी हम अपने चित्त से मिटा दें और शीतल, निर्मल तथा शान्त बने रहें—इस सिद्धि के लिये विधि क्या है?

कुछ लोग किसी ग़लतफ़हमी के कारण, किसी के भड़काने के कारण या अपने स्वार्थ अथवा अपनी कमज़ोरी एवं अपनी ईर्ष्या के कारण या हमारी ही किसी भूल को बढ़ावा देने की चेष्टा के कारण यदि गुटबन्दी करें, चालाकी, चालबाज़ी और चपलूसी में भी दूसरों को साथ मिलाकर हमें बदनाम करते फिरें, तब भी उनके इस दुर्व्यवहार रूपी दुर्गुण को हम देखते हुए भी न देखें—इसके लिए पुरुषार्थ की क्या रीति और नीति है?

अन्यश्च, यदि हमसे कोई छोटी या बड़ी भूल हो गई हो अथवा किसी नियम या मर्यादा का उल्लंघन हो ही गया हो तो उसके कारण सारी आयु यदि हमसे कोई तिरस्कारपूर्ण अथवा घृणा से व्यवहार करता चले या हमारी भूल को बढ़ा चढ़ाकर यहाँ-वहाँ कहता फिरे या सदा के लिये वह हमारे बारे में एक बिगड़ी छवि (bad-impression) बनाये रखे तो उसके हम इस दुर्गुण को भी न देखें—इसके लिये क्या उपाय है?

मनुष्य के जीवन में ऐसे कई व्यक्ति सम्पर्क में आते हैं जिनके प्रति वह शुभ भावना रखता है। वह उनकी सेवा-श्रुषा करता है, समय पर उनको सहायता भी देता है, उनसे वर्षों तक स्नेह और सहयोग से व्यवहार करता है और उन्हें अपना मित्र मानकर चलता है और तब वे भी उसके प्रति अपना आदर और स्नेह प्रकट करते हैं। परन्तु यदि अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर, कुछ विशेष साधन, सफलता अथवा स्थान प्राप्त हो जाने पर गर्व में आकर वे भी उनसे आँखें मोड़ लें, उसकी अवहेलना करें, उसके विरोध में लग जायें अथवा उसके प्रति स्नेह-रहित हो जायें, तब भी वह उनकी अभद्रता, निष्ठुरता, क्रूरता, स्वार्थपरता, या व्यवहार की निष्कृष्टता को ने देखें इस सिद्धि के लिये साधन और साधना क्या है?

यदि हम किसी के दुर्गुणों को अनदेखा कर दें तो व्यवहार-व्यापार में सफल कैसे होंगे?

इस पर भी विशेष बात यह है कि जिन व्यक्तियों के सम्पर्क या व्यवहार में आकर हमें कार्य-व्यवहार करना पड़ता है, उनके दुर्गुण या कमियों को मन से पूर्णतः निकाल दें, तो फिर हम उनसे सावधान कैसे रह सकेंगे और उनके धोखे, उनकी कुटिलता, उनमें ईमानदारी की कमी, उनके झूठ की आदत या चोरी के संस्कार आदि से हम अपना बचाव कैसे कर सकेंगे और हम अपने कार्य-व्यवहार इत्यादि में कैसे सफल हो सकेंगे? अतः दुर्गुण-दर्शन के बारे में इन सभी बातों पर विचार करने की ज़रूरत है।

हम ग्राहक किस चीज़ के हैं?

इस विषय में सोचने की पहली बात तो यह है कि हम ग्राहक किस चीज़ के हैं—गुणों के या अवगुणों के? कोई व्यक्ति बाज़ार में कपड़ा ख़रीदने जाता है तो रास्ते में दवाईयों की दुकान, फ़ोटोग्राफ़र का स्टुडियो, डाक्टर की डिस्पैन्सरी, मिष्ठान भण्डार, कूलर और रेफ़्रीजरेटर को बेचने या ठीक करने वाले वर्कशाप इत्यादि अनेकानेक दुकानें आती हैं। रास्ते में डाकख़ाना भी आता है और बिजली का दफ़्तर भी। एक होटल भी है और स्कूटर-स्टैण्ड भी। परन्तु वह उनको देखते हुए भी नहीं देखता। बहुत दुकानों की ओर तो ध्यान भी नहीं देता और यदि किसी ओर ध्यान आकर्षित हो भी जाता है तो वह उसे अन देखा कर देता है क्योंकि न तो उसे कूलर (Cooler) ख़रीदना है, न पंखा, न उसे दवाई लेनी है, न मिठाई, न उसे फ़ोटो खिंचवानी है न ही लेटर बाक्स (Letter Box) में चिट्ठी डालनी है। वह तो कपड़े की दुकान की तलाश में रहता है क्योंकि उसे कपड़ा ख़रीदना है। वह कपड़े की ही कीमत के लिये रकम लाया है और उसके मन में उस समय कपड़े की ही बात समाई हुई है। इसलिए न तो वह दूसरी चीज़ों का भाव पूछता है और न ही उनकी क्वालिटी (Quality) के बारे में जाँच करता है, न ही वह उनके विषय में किसी दुकानदार से बात ही करता है क्योंकि वह चीज़ें उसे लेनी ही नहीं हैं।

फिर अगर दुकानें बन्द होने में थोड़ा ही समय रह गया हो तब तो वो जल्दी-जल्दी और सीधे ही कपड़े वाले की दुकान पर जा पहुँचता है। इसी प्रकार, यदि हमने मनुष्य से देवता अथवा नर से नारायण बनना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि **हम दैवी गुणों के ग्राहक हैं। किसी कीमत पर भी हम दिव्य गुणों ही के ख़रीदार हैं। किसी भी दुर्गुण के**

जब हम ग्राहक ही नहीं हैं तो हमें चाहिये कि किसी में किसी भी कारण से दुर्गुण दिखाई दे भी जायें तो हम उन्हें अनदेखा कर दें और आगे चलते जायें क्योंकि समय हाथ से निकलता जा रहा है। अगर हम दुर्गुणों को देखने के लिये खड़े हो जायेंगे या बैठ जायेंगे तो हम वह सौदा कैसे खरीद सकेंगे जिसके कि ग्राहक हैं? इसी बीच दुकान भी बन्द हो जायेगी और तब हमें उन दुर्गुण-दर्शन के साथ-साथ अपनी मनोरथ की असफलता के भी दर्शन करने पड़ेंगे।

हमें यह याद रखना चाहिये कि मनुष्य का जैसा लक्ष्य होता है वैसे ही उसमें लक्षण भी आते हैं। अत: यदि हमें अपना लक्ष्य याद रहे कि हमें तो मनुष्य से देवता अर्थात् सर्व दिव्य गुणों से सम्पन्न बनना है तो हमारा ध्यान सदैव दिव्य गुणों में ही रहेगा और हमारे व्यवहार में सदैव दिव्य गुणों का ही समावेश होगा।

हानि और परेशानी

हम उस चीज़ को प्राय: छोड़ देते हैं जिसमें हम अपनी हानि ही हानि समझते हैं और जिसमें हमें लाभ का लेश भी दिखाई नहीं देता। जो चीज़ हमारा सर्वनाश कर दे, हमारे प्राण हर ले, हमें मार डाले, हमारा पूर्णत: अहित कर दे, उससे तो हम बड़ी तेज़ी से दूर भागते हैं अथवा अपने को बचाते या छिपाते हैं। हाँ जिस चीज़ में हमें थोड़ी हानि और थोड़ा लाभ महसूस होता है, उसके विषय में हम दुविधा में पड़ जाते हैं और कभी हम उसे अपना लेते हैं और कभी उसे छोड़ने की बात सोचते हैं। ऐसे ही यदि यह बात हमारी समझ में आ जाये कि दुर्गुण को अपनाना हमारे लिये घातक है, उसमें हमारी हानि ही हानि है और केवल हानि ही नहीं बल्कि परेशानी ही परेशानी भी है तो हम उन दुर्गुणों से अपना पल्ला झाड़ देंगे। यदि वे किसी में दिखाई दे भी जायेंगे तो हम उनकी आवभगत करने की बजाय उनसे पीठ मोड़ लेंगे और यदि वे एक बार की बजाय हज़ार बार भी हमारे सामने आयेंगे तो भी हम उन्हें सड़क पर पड़ी एक निकृष्ट, निकम्मी और सड़ांद-भरी चीज़ की तरह समझ कर उनके प्रति मन की आँख मूँद लेंगे और आत्मा के लिए उन्हें अस्पृश्य और अशुद्ध मानते हुए उनकी छाया तक से भी बचेंगे।

हमें इस विषय में भली-भाँति समझना चाहिये कि जैसे किसी की किडनी (Kidney) से पत्थरी निकालना बड़ा मुश्किल काम है, वैसे ही अगर किसी के दुर्गुणों को हम देखते रहेंगे तो वे हमारे आँखों के झरोखों से हमारे कोमल मन में एक पत्थरी की तरह से अपनी जगह बना लेंगे और वहाँ ही जम कर न केवल हमें चुभते रहेंगे और न केवल हमारी नींद तथा हमारा खाना भी ख़राब कर देंगे बल्कि वहाँ से उनका निकालना भी हमारे लिये एक बड़ी समस्या बन जायेगा। ऐसी हालत में हम दूसरों के दुर्गुण देखकर स्वयं को बड़ा रोगी क्यों बनायें?

भला सोचिए कि अगर एक व्यक्ति कुतुबमीनार की उच्च अट्टालिका पर खड़ा हो और वहाँ यदि कोई उसे पीठ के पीछे से धक्का दे दे तो अनजाने में खड़े उस व्यक्ति का क्या हाल होगा? ऐसे ही, जो व्यक्ति दिव्य गुणों की सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते महानता के शिखर पर खड़ा है या चढ़ता जा रहा हो, उसे भी यदि दूसरे का कोई दुर्गुण उसके मन में उतर कर जाने-अनजाने वहाँ से गिरा दे तो उस बिचारे का भी क्या हाल होगा?

यह ठीक हे कि संसार में लोग स्वार्थी हैं, कृतघ्न हैं अथवा एहसानफ़रामोश हैं और ईर्ष्यालु भी हैं। गुटबन्दी कर के दूसरों को नीचा दिखाने की कामना वाले भी कई लोग हैं। संसार को एक दंगल अथवा अखाड़ा बनाकर दूसरों को पछाड़ने की चेष्टा में ही लगे रहने वाले लोग भी हैं। वे किसी भी भूल को भुलाने की बजाय स्वयं तो उस भूल-भूलैया में फंस जाते हैं परन्तु भूल करने वाले को भी शूल या त्रिशूल पर चढ़ा कर ही मज़ा लेने की कामना करते हैं! परन्तु हमें सोचना है कि उनके काले कर्मों की कालख़ से हम स्वयं को कालिमा से क्यों रगें? यदि दुर्गुण-दर्शन ही इस 'अधम युग' का नियम (Rule) है तो हमें उत्तम युग में जाने के लिये इस युग के ऐसे लोगों में अपवाद (Exception) बनना है। हम अपनी गिनती उस प्रकार के बहुसंख्यक लोगों में क्यों करायें? उस आसुरी संगठन में हम भर्ती क्यों हों? उनके अनुचर हम क्यों बनें? हम उनके दुर्गुणों को देखकर संक्रामक रोग से रुग्न क्यों हों? हमें तो अपने आदिदेव ब्रह्मा के सद्चरित्रों को एवं सद्चित्र सामने रखते हुए उन्हीं का ही अनुकरण करना है क्योंकि हम तो दिव्य गुणों के ख़रीदार हैं। हम परमपिता परमात्मा के फ़रमानबरदार हैं, ब्रह्मा बाबा के वफ़ादार हैं और दिव्य गुणों की मूर्ति पर बलिहार हैं।

लोग हमसे अन्याय और अत्याचार करते हैं तो यह उनका अपना आचार है। वे हमारे किसी दुर्गुण के बारे में ढोल पीटते हैं, उसे राई का पहाड़ बनाते हैं या हमारी भूल न होने पर भी हममें भूल के दर्शन करके उसको त्रिभुवन-जितना बड़ा करके उसमें स्वयं 'भुवनेश्वर' बन बैठते हैं तो उनके कर्मों के इन्कम टैक्स (Income Tax) और सेल्स टैक्स (Sales Tax) और उनके दुर्गुणों की प्रापर्टी टैक्स (Property Tax) और वेल्थ टैक्स (Wealth Tax) के खाते स्वयं त्रिभुवनेश्वर देखेगा। तो

हम उनके ऐसे कारनामों के कारखानों के बबन्डर या बवाल में क्यों पड़े?

हमें चाहिए कि हम निर्मल और विमल, शुद्ध और श्रेष्ठ, साफ़ और स्वच्छ, पावन और पवित्र बने रहें। यदि हमारे प्रभाव से किसी दूसरे के दुर्गुण दूर नहीं होते तो कम-से-कम हम तो मन से दुर्गुणों से दूर रहें।

हमारे जीवन-दर्शन में 'दुर्गुण-दर्शन' नहीं है

हमारा जीवन-दर्शन दुर्गुण दर्शन नहीं है बल्कि 'दिव्यगुण-दर्शन' है, आत्म-दर्शन है और परमात्म-दर्शन है। इसलिये हमें चाहिए कि हम आसुरी गुणों की छैनी और हथोड़ी के प्रहार के शिकार न हों।

पहले ही से हम में जो दुर्गुण हैं, उन्हें ही निकालने का हम अभी तक यत्न कर रहे हैं। अभी तो हम उनके बोझ से भी मुक्ति नहीं पा सके। उनका ही बोझ इतना है कि उनमें यदि दुर्गुण का एक तिनका भी ओर जुड़ गया तो यह पुरुषार्थ रूपी ऊँट पर अति हो जाएगी और वह दब कर बैठ जायेगा। हमें याद रहना चाहिए कि एक-एक दुर्गुण को दूर करने में पुरुषार्थ का पसीना बहाना पड़ता है। और, यदि इस पर भी हम और दुर्गुण इकट्ठे करते जायेंगे तो इसका भाव यह होगा कि हम सीमा से अधिक लदे (Over-loaded) ऊँट की तरह बैठ जाना चाहते हैं। हम अपनी मंज़िल की ओर नहीं बढ़ना चाहते हैं।

गली-मुहल्ले में जब कोई व्यक्ति किसी चीज़ की ज़ोर से भी आवाज़ लगाता है, तब सुनकर भी तो हम उसे अनसुना कर देते हैं क्योंकि हम उस चीज़ के ख़रीदार नहीं होते। गाड़ी में बैठे होने पर चाय- विक्रेता ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ लगाता है– "चाय गरम, चाय गरम!" परन्तु हम चाय के ख़रीदार ही नहीं हैं तो हम सुनते हुए भी उस पर ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार, किसी में दुर्गुणों की तूती चाहे ज़ोर से बोल रही हो, हमें यह याद रखना है कि दुर्गुण तो हमारे पास बहुत हैं, हम और दुर्गुण क्या करेंगे? हम कोई दुर्गुणों के ज़ख़ीरा करने वाले या थोक व्यापारी थोड़े ही हैं? हम तो गुण-ग्राहक हैं, गुण ग्राहक! बस केवल गुण ग्राहक। अतः यदि किसी ने गुण देना हो तो दो वर्ना अपने दुर्गुण वह अपने पास रखे। हम न कबाड़ी हैं, न कबाड़खाने के सरमायादार!

आजकल बड़े-बड़े शहरों में प्रातः सूर्य की पहली किरणें निकलते ही कई लोग गली-गली में जाकर मैले कपड़ों के टुकड़ों, प्लास्टिक के टुकड़ों, लोहे के टुकड़ों, शीशियों आदि को यहाँ-वहाँ से चुन-चुन कर बोरियों में इकट्ठा कर लेते हैं, और उस कबाड़े को कबाड़ी के पास जाकर बेचते हैं। परन्तु हम दूसरों के दुर्गुण रूपी कबाड़े को मन की बोरी में डालने वालों में नहीं हैं।

फिर, अपने पास तो कबाड़ी भी उन टुकड़ों को नहीं रखता। जिस व्यक्ति को कबाड़ी टूटी हुई शीशियाँ या प्लास्टिक के टुकड़े बेचता है, वह भी उन्हें उसी रूप में अपने पास नहीं रखता बल्कि उन्हें परिवर्तित करके उन्हें निकृष्ट (Waste) से श्रेष्ठ (Best) बनाता है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यर्थ बात या कोई दुर्गुण हम उठा भी लें तो हमें चाहिये कि हम उसे दिव्य गुण में बदल दें।

सोचने की एक बात यह भी है कि अगर हम दूसरों के दुर्गुणों को देखते रहेंगे और उन्हें मन में रख देंगे तो उनके प्रति हमारे मन में घृणा पैदा हो जायेगी और हमारे व्यवहार में भी अन्तर आ जायेगा। दुर्गुणों की स्मृति हमारी योग-स्थिति के लिए भी घातक होगी और मन की शांति और पवित्रता के लिये भी बाधक होगी। अतः दूसरों के दुर्गुणों को ग्रहण करना गोया एक प्रकार से आत्मा को राहू-केतू का ग्रहण लगाना है। वह योग का प्रतियोग (Anti-Yoga) है। वह अपने मन में तनाव पैदा करके स्वयं को रोगी बनाने का हानिकर कर्म है जो सिगरेट पीने से कम घातक नहीं है। अगर हम तम्बाकू के कश नहीं लगाते और फेफड़ों में धुआँ नहीं भरते परन्तु अन्तरात्मा में दुर्गुणों का कश लगाते हैं तो मानिये कि हम दुर्गुणों की चिल्लम या अवगुणों का हुक्का पीते हैं। जैसे चूहा ज़हर मिले आटे की गोलियाँ बे-समझी से खा लेता है और तब वह गोलियाँ ही उसे खा जाती हैं और प्रातः को वह मरा पड़ा होता है, वैसी ही हालत उस व्यक्ति की होती है जो दुर्गुणों रूपी ज़हर को खा जाता है।

शिवबाबा ने दुर्गुणों को देखते हुए भी न देखने के बारे में हमें अनेक युक्तियाँ बताई हैं जिसके बारे में पाठक भली-भाँति परिचित ही हैं। इसलिये हम उनका यहाँ वर्णन करना अनावश्यक समझते हैं। आवश्यकता अभ्यास की है। खूब मेहनत करने से ही दुर्गुण पीछा छोड़ेंगे। इनमें से भी जो दुर्गुण-दर्शन की आदत है, वह बहुत पुरानी है। फिर, दुर्गुण इतने हैं, इतने लोगों में हैं और इतनी मात्रा में हैं कि वे स्वयं ही धमाके की तरह हमारा ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। परन्तु हमें बुरा न देखने, न सुनने, न सोचने और न करने के अभ्यास में दत्तचित होकर लगे रहना है। हमें यह याद रखना है कि हरेक व्यक्ति में कोई-न-कोई दिव्य गुण भी होता ही है। अतः हमें उसके उसी गुण को देखने का यत्न करना चाहिये। हमें यह याद रखना चाहिये कि हम तो गुण- ग्राहक हैं, गुणों के ख़रीदार हैं और कि हमारे जीवन- दर्शन में दुर्गुण-दर्शन को कोई स्थान नहीं है।

—जगदीश

सच्ची 'श्रीमद्भगवद् गीता' ही 'सच्ची अमरकथा' है

हर वर्ष अगस्त मास में भक्त लोग अमरनाथ की यात्रा पर जाते हैं। भारत के कोने-कोने से भक्त इकट्ठे होकर यात्रा करते हैं। काफी चढ़ाई है, दुर्गम रास्ता है फिर भी लोग बहुत श्रद्धा से अमरनाथ की जय का उद्घोष करते हुए अमरनाथ के दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझते हैं। अतः अमरनाथ, अमरकथा, अमरनाथ की गुफा के बारे में सही ज्ञान इस लेख में प्रस्तुत है–

–सम्पादक

अमरनाथ की गुफा को भारत के प्रसिद्ध शिव-मंदिरों में माना जाता है। लोगों की यह मान्यता चली आयी है कि इस स्थान पर शिव ने पार्वती को '**अमरकथा**' सुनाई थी। यह भी प्रसिद्ध है कि इस गुफा में बर्फ का जो शिवलिंग है, वह अपने-आप ही बन जाता है। यहां पर एक कबूतरों की जोड़ी भी रखते हैं, जिसके लिए बताया जाता है कि उसने भी 'अमरकथा' सुन ली थी जिससे कि वे भी अमर हो गये। प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में श्रद्धालु-भक्त बड़ी भावना से 'अमरनाथ' की यात्रा करने जाते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या जीवन में **सच्ची प्राप्ति**–अमरनाथ की यात्रा और दर्शन कर लेने से हो सकती है या उस सच्ची अमरकथा को सुनने से–जो परमपिता शिव ने सुनाई थी। पुनश्च, वह सच्ची अमरकथा अभी हम कहां से सुन सकते हैं? इन प्रश्नों के सही उत्तर प्राप्त करने के लिए 'अमरनाथ' के बारे में प्रचलित भक्ति-मार्गीय मन्तव्यों के पीछे छिपे हुए गुह्य ईश्वरीय आध्यात्मिक रहस्यों के भेद को जानना जरूरी है।

अमरनाथ कौन?

वर्तमान समय हम और आप मृत्यु-लोक में हैं। अमरलोक में '**अमरपद**' अथवा '**देवपद**' की प्राप्ति करवाने वाली कथा को ही अमरकथा कहेंगे। '**नर से श्री नारायण**' अथवा '**मनुष्य से देवता**' बना देने वाली ऐसी अमरकथा कौन सुना सकता है? परमात्मा को ही गति-सद्गति दाता अथवा मुक्ति-जीवनमुक्ति का दाता कहा जाता है। मनुष्य परमात्मा का ही गायन करते हैं कि-"आप पिताओं के भी पिता, गुरुओं के भी सद्गुरु और देवों के देव हो।' परमात्मा ही त्रिकालदर्शी और ज्ञान के सागर हैं। मनुष्य तो अपने पिछले जन्मों को भी नहीं जानते। अतः केवल परमपिता परमात्मा में ही अमरकथा सुनाने की **सर्वशक्ति** है। सभी मानेंगे कि परमात्मा ही अमरनाथ हैं।

अमरनाथ शिव हैं या शंकर

आज मनुष्य शिव और शंकर के भेद को भी भूल चुके हैं। हालांकि अमरनाथ की गुफा में शिवलिंग की प्रतिमा है (न कि शंकर की मूर्ति)। तो भी शिव और शंकर को एक मानने के कारण मनुष्य यही समझते हैं कि अमरकथा शंकर ने सुनाई थी। इसका दूसरा कारण यह भी है कि शिवलिंग की इतनी पूजा करते हुए भी भारतवासी नहीं जानते कि यह किसकी प्रतिमा है। सम्भवतः वे यह भी सोचते हैं कि यह अण्डाकार का लिंग '**अमरकथा**' सुना ही कैसे सकता है क्योंकि बोलने के लिये तो मुख चाहिये। और जैसा कि ऊपर स्पष्ट भी किया गया है कि– परमात्मा शिव ही अमरनाथ हैं।" अब परमात्मा तो निराकार अर्थात् अव्यक्तमूर्त तथा ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप वाले हैं, उनका कोई मनुष्यों जैसा साकार या सूक्ष्म देवताओं जैसा आकारी रूप नहीं है। परन्तु शंकर का तो जटाजूटधारी आकारी रूप दिखाते हैं। परमात्मा शिव त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के भी रचयिता हैं। इसीलिये शिवलिंग पर त्रिपुण्ड दिखलाते हैं। मन्दिरों में ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर की वन्दना भी 'देवताय नमः' कहकर की जाती है। शंकर को 'महादेव' कहने से भी सिद्ध होता है कि वह देवता है। शिव रचयिता है और शंकर उनकी रचना है, जिसके द्वारा शिव पुरानी सृष्टि के महाविनाश का कर्त्तव्य करवाते हैं। विनाश करवाने के लिये शंकर को कोई अमरकथा सुनाने की जरूरत नहीं पड़ती। शिव का अर्थ है–'कल्याणकारी'। शिव 'बिन्दु' को भी कहते हैं। परमात्मा ही सर्व कल्याणकारी और ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप वाले हैं। इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग की प्रतिमा परमात्मा ही का स्मारक-चिन्ह है। अतः अमरनाथ, परमात्मा शिव हैं न कि देवता शंकर। शिव और शंकर को एक मानना या 'शिव शंकर भोलेनाथ' कहना अयथार्थ है। भक्तों ने तो न सिर्फ शिव और शंकर को मिला दिया है बल्कि आत्मा-परमात्मा एक हैं–मानते हुए कई तो अपने ऊपर भी '**अमरनाथ**' नाम रख लेते हैं। परिणामस्वरूप कई अवसरों पर भक्त अमरनाथ जी, भगवान् अमरनाथ जी की यात्रा कर रहे होते हैं।

अमरकथा किसने सुनी?

प्रचलित मान्यता है कि अमरकथा पार्वती ने सुनी थी। अब यह तो साधारण विवेक की बात है कि अमरकथा, जिससे सद्गति अथवा अमरपद की प्राप्ति होती है को सुनने की जरूरत उसी को हो सकती है जिसकी अभी सद्गति न हुई हो या यों कहें कि जो अभी तक दुर्गति में हो। परन्तु पार्वती को तो सब देवी ही मानते हैं। उन्हें तो सद्गति, अमरपद अथवा देवपद की प्राप्ति तो पहले से ही थी। पार्वती जी कोई दुर्गति में थोड़े ही थीं जो उन्हें अमरकथा सुनने की जरूरत पड़ी? दूसरे यह कहना तो कोरी गप्प है कि अमरकथा को सुनने से उन कबूतरों की जोड़ी अमर हो गयी थी! विचार कीजिये कि शिव ने आखिर अमरकथा तो मनुष्यों की भाषा में ही तो सुनाई होगी? क्या कबूतर मनुष्यों की भाषा समझते हैं? फिर, कबूतर बेचारों को तो यह अच्छा फल मिला कि वह सदा काल के लिये कबूतर ही बने रहेंगे जबकि पशु-पक्षियों की योनियों को मनुष्य नीची योनियां मानते हैं। इससे उन कबूतरों को सद्गति मिली कहेंगे या श्राप? फिर अमरपद का अर्थ 'शरीर न छोड़ना' तो नहीं है। यह तो प्रकृति के नियम के ही विरुद्ध हो जायेगा। शरीरों का त्याग तो श्री राधे, श्री कृष्ण, श्री सीता, श्री राम सभी ने किया था। इतना अवश्य है कि अमरलोक में 'अकाल-मृत्यु' नहीं होती थी। यदि आप अमरनाथ के पुजारियों को कुछ भेंट देकर पूछें तो वह स्पष्ट बतला देते हैं कि–'एक कबूतर के मर जाने पर दूसरा वहां रख दिया जाता है और वहां शिवलिंग भी बर्फ से अपने आप नहीं बन जाता अपितु बनाया जाता है, ताकि भक्तों की भावना और पुजारियों की आजीविका, दोनों बनी रहें।'

अब प्रश्न उठता है कि जब न तो पार्वती जी ने अमरकथा सुनी और न ही कबूतर ने, तो फिर यह कथा किसने सुनी? यह एक गुह्य-भेद है। विचार कीजिये कि देवी-देवताओं को **देवपद की प्राप्ति** कैसे हुई होगी? वास्तव में शिव की यह अमरकथा कोई एक या दो या चार व्यक्ति विशेष नहीं बल्कि समूचे सतयुगी सूर्यवंशी तथा त्रेतायुगी चन्द्रवंशी घरानों के श्री कृष्ण, श्री राम इत्यादि सभी देवी-देवतायें अपने जीवनमुक्त देवपद से पूर्व वाले जन्म में सुनते हैं। इसी के फलस्वरूप उन्हें सतयुग एवं त्रेतायुग में देवपद की प्राप्ति होती है। प्रसिद्ध है कि गोपेश्वर (वृन्दावन) में श्री कृष्ण और रामेश्वर में श्री राम ने शिव की प्रतिमा स्थापित करके उसकी पूजा की, जिसकी स्मृति में इन स्थानों पर आज भी शिव-मन्दिर मौजूद हैं। इससे सिद्ध होता है कि श्री कृष्ण, श्री राम तथा उनकी वंशावली के अन्य सभी देवी-देवताओं के परमपिता, परम-शिक्षक एवं परम सद्गुरु शिव ही हैं जिन्होंने उनको पूर्वजन्म में अमरकथा सुनाकर उन सभी को देवी-देवता पद पाने के योग्य बनाया था।

सच्ची अमरकथा क्या है?

कई मनुष्यों का तर्क है कि शिव ने पार्वती को अमरकथा उसके अपने लिए न सही, भक्तों के कल्याणार्थ ही सुनाई होगी। इससे इतना तो स्पष्ट है कि भक्तों का कल्याण अमरकथा को सुनने से ही हो सकता है। परन्तु अमरनाथ में तो केवल बर्फ का शिवलिंग ही देखने को मिलता है, वहां पार्वती जी या अमरकथा तो उपलब्ध ही नहीं है। भक्त जन तो बस अमरनाथ के दर्शन करके, कुछ रुपयों की भेंट चढ़ाकर यह विश्वास लिये हुए वापस अपने घरों को लौट आते हैं कि यात्रा का पुण्य उनके खातों में जमा हो गया होगा। इसी प्रकार पुण्य कमाने की झूठी आशा लिये हुए वे बेचारे अनेक अन्य स्थानों की यात्रायें भी करते रहते हैं। इसीलिए तो भक्तों को **'अन्ध-श्रद्धालु'** कहते हैं। कहावत भी प्रसिद्ध है कि **'बिना ज्ञान के गति नाहिं'** (न कि बिना भक्ति के)। तो क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि अमरनाथ या अन्य किसी स्थान पर सद्गति प्रदान करने वाली अमरकथा तो उपलब्ध ही नहीं है? आज कोई भी मनुष्य नहीं जानता कि सच्ची अमरकथा क्या है?

वास्तव में 'अमरकथा' नाम स्वयं परमात्मा शिव द्वारा अज्ञान-अन्धकार, शिवरात्रि अथवा अति-धर्मग्लानि के समय कल्पान्त के समय अवतरित होकर सुनाये गए रचयिता (परमात्मा) और इस मनुष्य सृष्टि रूपी रचना के आदि-मध्य-अन्त के उस ईश्वरीय ज्ञान का है, जिसके द्वारा ही नई पावन, सतयुगी, दैवी सृष्टि (स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ) की पुनर्स्थापना और मनुष्यों को उस स्वर्ग में देवपद अर्थात् जीवनमुक्ति की प्राप्ति होती है। कालान्तर से उस सच्चे ईश्वरीय ज्ञान की अमरकथा को **'ज्ञान सोमरस, 'सत्य-नारायण की कथा', 'तीज़री की कथा'** इत्यादि कई नाम दे दिए गये और तदानुसार निराकार परमात्मा शिव के स्मारक-चिन्ह 'शिवलिंग' के मन्दिरों पर भी 'सोमनाथ', 'विश्वनाथ', 'मुक्तेश्वर' इत्यादि कर्त्तव्यवाचक नाम पड़े। सत्य तो यह है कि सच्ची 'श्रीमद्भगवद्गीता' नाम भी स्वयं निराकार परमात्मा शिव द्वारा सुनाई गई उस ज्ञान-मुरली अथवा अमरकथा का ही है।

परमात्मा शिव अमरकथा किस रूप में सुनाते हैं?

अमरकथा सुनाने के लिए निराकार परमात्मा शिव को साकार रूप धारण करना पड़ता है क्योंकि जब वह मुख द्वारा बोलेंगे तब ही मनुष्यात्माएं कानों से उस कथा को सुन सकती हैं। परन्तु परमात्मा शिव तो पुनर्जन्म एवं मरण के चक्कर से सदा-मुक्त हैं। इसी कारण शिव को **'सदाशिव'** भी कहते हैं। अमरकथा सुनाने के लिए शिव **'दिव्य-जन्म'** लेते हैं, जिसकी यादगार 'शिव जयन्ति' अथवा 'शिवरात्रि' के रूप में हर वर्ष मनाई जाती है। वह साधारण मनुष्यों की तरह माता के गर्भ से जन्म लेकर नस-नाड़ी के बन्धन में नहीं आते। वह तो प्रकृति को आधीन करके अथवा **'परकाया प्रवेश'** करके अर्थात् अवतरित होते हैं। प्रश्न उठता है कि परमात्मा किस साकार रूप में अवतरित होते हैं? इसका रहस्य हमारे देश में प्रचलित उस लोक कथा में समाया हुआ है जिसमें

बताया गया है कि गंगा शिव से निकली थी जिसको भागीरथ ने धरती पर उतारा था। यह वृतान्त कोई शंकर की जटाओं से निकलने वाली पानी की गंगा का नहीं है। जैसा अन्ध-श्रद्धालु मनुष्यों ने शिव और शंकर के भेद (जिसे हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं) को न जानने के कारण चित्रों में दिखा दिया है। न ही यह वार्ता पानी की गंगा नदी के लिए है जिसको पतित-पावनी समझकर अन्ध-श्रद्धालु लोग उसमें शारीरिक स्नान करते रहते हैं तथा गंगा-जल पीते रहते हैं। वास्तव में **यह कथा शिव से निकलने वाली सच्ची-सच्ची पतित-पावनी, ज्ञान-गंगा अथवा अमरकथा के बारे में है, जिसमें 'भागीरथ' नाम 'प्रजापिता ब्रह्मा' के लिए प्रयोग किया गया है। भागीरथ का अर्थ है 'भाग्यशाली रथ' अर्थात् वह सौभाग्यशाली मनुष्य शरीर रूपी रथ (शरीर को रथ भी कहते हैं) जिसमें प्रवेश करके परमात्मा शिव दिव्य और अलौकिक जन्म अथवा अवतार लेते हैं।** यह तो सभी मानते हैं कि परमात्मा नई सृष्टि की स्थापना का कार्य ब्रह्मा के द्वारा ही करते हैं। इस अलौकिक कर्त्तव्य को वह प्रजापिता ब्रह्मा के तन में प्रविष्ट होकर उनके मुखारविन्द से **सच्ची-गीता** अथवा **अमरकथा** का **भगवानुवाच** करके बहुत काल से प्रायः लुप्त आदि-सनातन देवी-देवता धर्म की पुनर्स्थापना करवाकर, सम्पन्न करते हैं। यह मान्यता गलत है कि गीता श्री कृष्ण ने सुनाई थी, क्योंकि गीता के भगवान् शिव जन्म नहीं, अवतरित होते हैं अर्थात् पर-काया प्रवेश करते हैं जबकि श्री कृष्ण ने तो जन्म लिया था।

परमात्मा शिव अमरकथा कब सुनाते हैं?

यह कथा तो चली आती है कि शिव ने अमरकथा सुनाई थी, जिस अमरकथा का गायन है। इससे सिद्ध होता है कि अमरकथा परम्परा से नहीं चली आई। अब प्रश्न उठता है कि जब वह अमरकथा उपलब्ध ही नहीं है तो मनुष्य उसे सुनें कहां से अथवा, परमात्मा शिव ने वह अमरकथा कब सुनाई थी और इसे हम पुनः कब सुनेंगे? इसका उत्तर गीता में वर्णित परमात्मा शिव के इन महावाक्यों में समाया हुआ है कि 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि...' अर्थात् "जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब मैं परमात्मा अवतरित होता हूं।" अब सारे सृष्टि-चक्र (कल्प) में अति धर्मग्लानि का समय तो कलियुग के अंत का समय ही होता है, जब पापों का घड़ा पूरा भर जाता है। वही परमात्मा के नई सतयुगी सृष्टि की पुनर्स्थापना और पुरानी कलियुगी सृष्टि के विनाश करवाने का समय भी है। बस, उसी कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के कल्याणकारी '**पुरुषोत्तम संगमयुग**' पर परमात्मा शिव स्वयं अवतरित होकर मनुष्यात्माओं को सच्ची अमरकथा सुनाते हैं। इस अमरकथा के द्वारा ही नई सतयुगी सृष्टि जिसे अमरलोक, स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ भी कहते हैं, की स्थापना होती है। यह अमरकथा परम्परा तक नहीं चलती। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि परमात्मा शिव के अमरकथा पूरी करते ही पुरानी कलियुगी सृष्टि का महाविनाश हो जाता है, जोकि नई सतयुगी सृष्टि की स्थापना के लिए आवश्यक है। इसी महाविनाश में परमात्मा के महावाक्यों की सब लिपियां, इत्यादि नष्ट हो जाती हैं। दूसरे, "दुःख में हरि को सब भजें और सुख में भजे न कोई" वाली उक्ति के अनुसार सतयुगी अमरलोक में देवी-देवताओं को, जिन्हें अमरकथा के द्वारा भविष्य २१ जन्मों के लिए देवपद प्राप्त हो चुका होता है, वहां इस अमरकथा की जरूरत भी नहीं रहती। गीता के 'यदा यदाहि...' शब्दों में भी इसी सत्यता की पुष्टि होती है कि भगवान् शिव 'पुनः-पुनः' अवतरित होकर अमरकथा सुनाते हैं। यदि वह कथा परम्परागत चलती रहती, तब तो उनको पुनः अवतरित होना ही न पड़ता और न ही धर्मग्लानि होती। मनुष्यों ने 'यदा यदाहि...' शब्दों का अर्थ समझ लिया है कि भगवान् हर युग में अवतार लेते रहते हैं और उनके एक ही कल्प में चौबीस अवतार होते हैं। परन्तु, विचार करें कि यदि भगवान् शिव सतयुग या त्रेता में अवतरित होकर अमरकथा सुना जाते तब तो सृष्टि की '**गिरती कला**' वहीं पर रुक जाती और अधिक धर्मग्लानि वाला कलियुग आता ही नहीं। तब तो अमरकथा भी कायम रहती क्योंकि इन युगों के अन्त में कोई सृष्टि का विनाश तो होता नहीं जो लिपियां इत्यादि नष्ट हो जातीं। फिर यदि अमरकथा परम्परा से उपलब्ध रहती तो द्वापर में पुण्य-क्षीण होने पर देवताएं वाममार्गीय न बनते और न ही धर्मग्लानि होती। तब भगवान् के अवतरित होने का प्रश्न ही न उठता और न ही उसके 'यदा यदाहि...' महावाक्य निकलते। वास्तव में इन महावाक्यों का अर्थ यह है कि परमात्मा शिव 'कल्प-कल्प' अर्थात् हर कल्प के अन्त में संगम 'युगे-युगे' अवतरित होकर अमरकथा सुनाते हैं।

परमात्मा शिव अमरकथा कहां पर सुनाते हैं?

भक्ति मार्ग के मन्तव्य के अनुसार तो शिव ने अमरकथा सुनाने के लिए अमरनाथ की बर्फ से ढंकी गुफा को ही चुना था, परन्तु यह मान्यता भी अन्य असत्य विचारधाराओं से सम्बंधित है कि शंकर ही शिव हैं तथा अमरकथा शंकर ने पार्वती को सुनाई थी। वास्तविकता यह है कि परमात्मा शिव ने यह अमरकथा न तो किसी पहाड़ की चोटी पर सुनाई थी और न ही किसी युद्ध के मैदान में। यह कथा सुनाने के लिए परमात्मा शिव हर कल्प के अन्त में (अर्थात् हर ५००० वर्ष के बाद) एक '**रुद्र-ज्ञान-यज्ञ**' रचते हैं (इसीलिए शिव को रुद्र भगवान् भी कहते हैं) जिसके माध्यम से वह कलियुगी '**शूद्र-बुद्धि**' बन चुके हुए मनुष्य सम्प्रदाय को ब्रह्ममुख द्वारा मुख-वंशावली '**सच्चे-ब्राह्मण**' (ब्रह्माकुमार अथवा ब्रह्माकुमारियां) बनाकर उन्हें ईश्वरीय ज्ञानयोग की शिक्षा देकर पवित्रता और दिव्य गुणों की धारणा करवाते हैं ताकि वह अपने भविष्य २१ जन्मों के लिए नई सतयुगी एवं त्रेतायुगी

शेष पृष्ठ ३२ पर

"अहम्, वहम और रहम"

□ ब्र.कु. अशोक, पावनधाम, आबू

प्रायः सभी मनुष्यों में यह तीनों बातें किसी-न-किसी हद तक पाई ही जाती हैं। किसी में किसी एक की अधिकता है तो किसी में दूसरे की। अहम् और वहम मनुष्य के जीवन पर बुरा असर डालते हैं। और रहम उसे भावुक बनाकर उसके चरित्र निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है। हम यहां पर तीनों की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे।

अहम् प्रत्येक मनुष्य में गहराइयों तक छुपा हुआ है। प्रायः अनेक मनुष्य अपने सूक्ष्म अहम् को नहीं पहचानते। उनका मोटा अहम् दूसरों को दिखाई देता है। अहम् मनुष्य के चरित्र रूपी अमृत में जहर के समान है, जो मनुष्य जीवन को विषैला दुःखी और अशान्त बना देता है।

संसार में रहते हुए किसी भी कार्य को करने में अहंकारी मनुष्य को दूसरों के असहयोग का सामना करना पड़ता है। प्रायः लोग उससे दूर ही रहना चाहते हैं और उसके कार्यों में सहयोग नहीं करते। इसलिए उसका अहम् उसे ही कष्ट देता है। परेशान होकर वह चिल्लाता है व निराश होता है कि उसे कोई भी प्यार नहीं करता, उसे कोई भी मदद नहीं करता। अहंकारी मनुष्य की तुलना लोगों ने मुर्दे से की है, जैसे मुर्दा अकड़ जाता है, वैसे ही अहंकारी मनुष्य भी अकड़ा रहता है, वह झुकना नहीं जानता, इसलिए वह किसी को झुका भी नहीं सकता।

अहम् संगठन की शक्ति को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। उसके रूखे व्यवहार के कारण कोई भी उसके साथ मिलकर काम करना नहीं चाहता। राजयोग के अभ्यास में अहम् एक दीवार की तरह है। अगर कोई ज्ञानी या योगी आत्मा अहंकार के वश है तो उसे कभी भी अपने जीवन में सफलता नहीं मिलती इसलिए ज्ञान की अग्नि में अहंकार को गर्म करके नर्म करना चाहिए। ज्ञान के द्वारा मनुष्य को अपने विचारों को सरल करना चाहिए और योग अभ्यास द्वारा निरंतर आत्मिक स्थिति के अभ्यास के द्वारा अहम् को समाप्त कर देना चाहिए।

मनुष्य को न तो अपनी कलाओं का अहंकार होना चाहिए, न अपने धन का, न अपनी शिक्षा का। अहंकार आते ही पतन प्रारंभ हो जाता है। अतः जीवन में निरंतर उन्नति करने के लिए अहम् को समाप्त करना अति आवश्यक है। अहंकारी मनुष्य कभी किसी को सुख नहीं दे पाता। इसलिए उसे भी कभी सुख नहीं मिलता।

इसी प्रकार वहम मनुष्य को वास्तविकता से दूर कल्पनाओं के लोक में ले चलता है। वहमी मनुष्य कभी भी किसी पर विश्वास नहीं करता। संशय बुद्धि हुआ ऐसा मनुष्य भी सदा ही परेशान रहता है—यह सोच-सोचकर कि पता नहीं दूसरे लोग मेरे बारे में क्या सोचते होंगे। जब वह किन्हीं दो व्यक्तियों को बातें करते देखता है तो पहला सन्देह उसका यही होता है कि कहीं वे मेरे ही बारे में तो बातें नहीं कर रहे, कहीं वे मेरी ही तो निन्दा नहीं कर रहे।

ऐसा कल्पनाओं के लोक में विचरण करने वाला मनुष्य सदा ही कल्पना करता रहता है। उसे नींद में भी चैन नहीं भासता, उसका मन भी सदा ही अस्थिर रहता है और उसे जीवन भर संतुष्टी भी नहीं होती। इस पर एक कहानी अति सुन्दर है—

एक बार एक व्यक्ति बहुत बीमार हुआ। लोगों ने कहा यह तो मर गया। उस व्यक्ति ने अर्धचेतन अवस्था में यह सुना और मान लिया कि वह मर चुका है। पुनः जब उसमें चेतना आई तो लोगों ने कहा कि इसे डॉक्टर के पास ले चलो। उसने कहा मैं तो मर गया हूं। मुझे वहां क्यों ले जाते हो? परन्तु उसे डॉक्टर के पास ले जाया गया। वहां जब उसका खून परीक्षण के लिए निकाला तो उसने कहा कि अब मुझे पता चला कि मरे हुए मनुष्य में भी खून होता है। डॉक्टर ने उसे बहुत समझाया कि तुम अभी जीवित हो, परन्तु उसे इतना वहम हो गया कि वह यही कहता रहा कि मैं तो मर चुका हूं।

तो हम देख सकते हैं कि वहमी मनुष्य स्वयं की वास्तविकता में भी वहम कर लेता है, उसके विचारों का आधार दूसरे ही बने रहते हैं। और वह सत्य को स्वीकार करने में कितनी कठिनाई महसूस करता है।

योग के मार्ग पर मनुष्य को वहमी स्वभाव का नहीं होना चाहिए। वहमी मनुष्य संगठन में सदा ही उखड़ा-उखड़ा सा रहता है। योग में उसका मन नहीं लगता। उसका जीवन भी मुरझाये फूलों की तरह दिखाई देता है। संक्षेप में यों कहें कि वहमी व्यक्ति न जीवन में सफल होता और न साधना के मार्ग पर अपनी मंजिल को पाता है। वह विश्वास और अविश्वास के दौराहे पर भटकता रहता है।

रहम मनुष्य का एक श्रेष्ठ गुण है। जहां रहम है वहीं मानवता है और जहां निर्दयता है वहां दानवता है। कहा जाता है—जिस दिल में रहम नहीं, वह दिल तो पत्थर है। ऐसा पत्थर जो कभी भी नहीं पिघलता। मानव हृदय रहम से भरपूर होना ही चाहिए। यदि मानव रहमदिल नहीं तो उसमें व जानवरों में कोई अन्तर नहीं।

हमें राजयोग द्वारा शिवबाबा रहमदिल बनना सिखाते हैं कि बच्चे! अनेक मनुष्य अंधकार में भटक रहे हैं, अज्ञान के कारण

शेष पृष्ठ ३२ पर

परमात्मा का अस्तित्व और न्याय

परमात्मा के अस्तित्व में जितनी लोगों को आस्था है शंका भी उससे कुछ कम नहीं है। आस्तिक जगत् परमात्मा के जितने गुणगान करता है उतना ही नास्तिक जगत् उन गुणों के आधार पर ही उसके अस्तित्व को एक कल्पना सिद्ध करता है। आस्तिक जगत् कहता है कि परमात्मा सर्वव्यापी है, घट-घटवासी है। उसकी ही प्रेरणा से जगत् के सब कार्य व्यवहार चलते हैं। उसकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। वह न्यायी है उसके दरबार में दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है। वह सबके कर्मों को देखता रहता है। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा फल देता है। आस्तिकों की यह बातें सुनकर नास्तिक मुस्कराता हुआ जगत् की प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली बातों के उदाहरण से यह सिद्ध करता है कि जबकि आज अन्यायी और अत्याचारी गुलछर्रे उड़ा रहे हैं तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि किसी सर्वव्यापक सर्वदृष्टा न्यायी परमात्मा का कहीं अस्तित्व भी है।

परमात्मा का कर्त्तव्य

वास्तव में परमपिता परमात्मा के सत्य परिचय का अभाव ही इस सारे विवाद का मूल है। इसमें वास्तविक भूल नास्तिकों की नहीं बल्कि उन तथाकथित आस्तिकों की है जो परमात्मा के विषय में असंगत भ्रान्तिपूर्ण धारणायें प्रचारित करते हैं जो विवेक और अनुभव की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकतीं। अब एक सर्वव्यापी की बात को ही लीजिये जबकि यह कहा जाता है कि परमात्मा सर्वव्यापी है,घट-घटवासी है। उसकी मर्जी बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है तो इसका सीधा अर्थ यही हुआ कि सृष्टि में जो भी अन्याय, अनाचार, अत्याचार और दुराचार हो रहा है वह सब परमात्मा की मर्जी से हो रहा है। तो ऐसे दुष्कर्म कराने वाले तथाकथित परमात्मा को कौन श्रेष्ठ मानेगा। परन्तु जो परमपिता परमात्मा के सत्य परिचय से परिचित हैं वे जानते हैं कि न परमात्मा सर्वव्यापी और घट-घटवासी है और न ही यह दुष्कर्म उसकी मर्जी से होते हैं। मनुष्य कर्म करने व कर्मों का फल भोगने में स्वतन्त्र है। वह जो भी बुरा कर्म करता है वह उसे स्वयं अपने विकारी संस्कारों के वशीभूत होकर ही करता है और उसका फल भोगता है। कर्म, अकर्म और विकर्म की गहन गति का जानने वाला ही यह समझ सकता है कि मनुष्य का कर्म और कर्मफल कैसे होता है। न परमात्मा कर्म कराता है न फल देता है। परमपिता, परम शिक्षक, परम सद्गुरु परमात्मा तो कर्मों का 'ज्ञान' देते हैं। वह बताते हैं कि बच्चों के विकारी संस्कार कैसे बने और पुनः निर्विकारी कैसे बन सकते हैं। वह मनुष्यात्माओं को आत्माभिमान और देहाभिमान का भेद बताते हैं। सिखलाते हैं कि देहाभिमान बनने से अपने को देह समझने से मनुष्य पतित विकारी दुःखी और अशान्त होता है। आत्माभिमानी होने से आत्मस्मृति में रहकर कर्म करने से पवित्र, निर्विकारी, सुखी और शान्त रहता है।

यह कार्य वह ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे किसी स्कूल या कॉलेज का अध्यापक। अध्यापक कक्षा के सभी बच्चों को पढ़ाकर सद्बुद्धि देने का प्रयत्न करता है परन्तु प्रत्येक विद्यार्थी उसे अपने ढंग से ग्रहण करता और प्रयोग में लाता है। एक अध्यापक से एक ही कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में से कोई अच्छी रीति पढ़कर अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होता तो कोई खेल-कूद में समय गंवाकर फेल हो जाता है। आगे के जीवन पर भी उनकी इस पढ़ाई का अपनी-अपनी योग्यतानुसार ही प्रभाव पड़ता है। परमपिता परमात्मा प्रत्येक कल्प में एक बार कलियुग के अन्त और सतयुग की आदि के संगम समय पर अपने परमधाम से आकर मनुष्यों को कर्मों का ज्ञान देते हैं। उसे जो जितना ग्रहण करता वह उतना ही उसके अनुकूल आचरण करके शुभ फल भोगता है। शिक्षा देते समय भी और उसके बाद भी परमपिता परमात्मा उतना ही निरपेक्ष रहते हैं, जितना प्रकाश फैलाते समय सूर्य। सूर्य यह नहीं देखता कि कौन कितना प्रकाश ग्रहण कर रहा है और किसने अपनी कोठरी बन्द कर रखी है।

परमात्मा का न्याय

जहां तक मनुष्य के कर्म करने और फल भोगने का सम्बंध है वह एक स्वचालित विधान अनुसार चलता है। यदि कोई अपना हाथ अग्नि में डाले तो उसका हाथ जल जाता है। अब इस क्रम में ऐसा कुछ नहीं है कि परमात्मा ने उसका हाथ जलाकर उसे दण्ड दिया। यह तो एक नियमानुसार हुआ कि जो आग में हाथ डालेगा वह जलेगा। इसी प्रकार कोई अन्याय, अत्याचार या दुराचार करता है तो उसका दण्ड उसे तुरन्त परमात्मा नहीं देते बल्कि उस कर्म का उसके संस्कार और सम्बंध पर प्रभाव पड़ता है। वह क्रोधी और अहंकारी हो जाता है। जिस क्रोध और अहंकार में एक तो वह स्वयं अपने आप में जलता रहता दूसरे वह अपने क्रूर स्वभाव के कारण हर-एक से टकराता रहता है और उस क्रम में कभी उसकी टक्कर एक ऐसे व्यक्ति से हो जाती है जो उसकी इतनी मरम्मत कर देता है कि उसे अपने पिछले दुष्कर्मों का फल एक बार में ही मिल जाता है। यही बात लोभ तथा अन्य विकारों के साथ भी लागू होती है। इस प्रकार परमात्मा हर व्यक्ति के हर कर्म का हर समय फल नहीं देते बल्कि वह स्वचालित नियम अनुसार संस्कार और सम्बंध को प्रभावित कर अपने आप ही

अच्छा-बुरा फल भोगती रहती है। यही परमात्मा का न्याय है।

न्याय में विलम्ब

सत्कर्म करने वाले मनुष्य को दुःखी व दुष्टों को सुखी सम्पन्न देखकर प्रायः लोगों को यह सन्देह होता है कि कर्मानुसार कर्मफल का विधान सही काम नहीं करता, क्योंकि यदि ऐसा होता है तो यह कैसे सम्भव था कि अन्यायी, अत्याचारी मौज उड़ावें और सत्पुरुष दुःख भोगें। परन्तु ऐसा सन्देह करने वाले इस बात को भूल जाते हैं कि सभी कर्मों का परिणाम तत्काल नहीं निकलता। स्कूल की पढ़ाई में व्यस्त रहने वाले विद्यार्थी को खेल-कूद में समय गंवाने वाले उच्छृङ्खल विद्यार्थी परेशान करते हैं और खुद घूमते-फिरते मौज उड़ाते दिखाई पड़ते हैं। यदि हम अपनी दृष्टि उसी समय तक ही सीमित रक्खें जबकि यह काण्ड चल रहा है तो हमें अवश्य ही यही दिखाई पड़ेगा कि अच्छा विद्यार्थी दुःखी व शरारती सुखी है। परन्तु यदि हम अपनी दृष्टि को और व्यापक बनाकर उन दोनों विद्यार्थियों के भविष्य को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो यह बात समझने में देर न लगेगी कि अच्छे विद्यार्थी का भविष्य उज्ज्वल व शरारती का अन्धकारमय है। शिक्षा समाप्त करने पर अच्छा विद्यार्थी अच्छे पद पर आसीन हो सुख पा रहा है और शरारती बालक नौकरी के लिए दूर-दूर भटकता फिर रहा है और अन्ततः कोई छोटी नौकरी व छोटी तनख्वाह पर जीवन के दिन किसी तरह काट रहा होता है। आज खेत में बीज डालकर मेहनत करने वाले को इसका फल प्राप्ति में कुछ समय तो अवश्य लगेगा चाहे आम का बीज डालें या कांटेदार बबूल का। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

कर्मों के कर्मफल देखते हुए परमात्मा का न्याय समझने में भूल हमसे इसी कारण होती है कि हमारी दृष्टि दूरदर्शी न होकर बड़ी सीमित रहती है। हम किसी मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्म का कर्मफल उसके एक जन्म में ही पूरी तरह देखना चाहते हैं जबकि सत्यता यह है कि आत्मा जो ही कर्म करने वाली व भोगने वाली है एक जन्म तक सीमित नहीं है। वह अजर, अमर, अविनाशी है। उसे वर्तमान में मिलने वाला कर्मफल भूत और भविष्य दोनों से जुड़ा हुआ है ऐसा भूत और भविष्य जिसे इन स्थूल नेत्रों से न देखते हुए भी ज्ञाननेत्र से स्पष्ट देख सकते हैं और यह भलीभांति समझ सकते हैं कि परमपिता परमात्मा की छत्रछाया में चलने वाला सृष्टि का व्यापार न्याय और नियम के आधार पर ही चल रहा है। □

आध्यात्मिक और भौतिकता

आज सारा संसार भौतिकता का पुजारी बन गया है। यद्यपि आज का मानव पाश्चात्य वैज्ञानिकों के नये-नये आविष्कारों के प्रभाव में आकर ईश्वर की सत्ता में शंका करने लगा है तो भी समय-प्रति-समय उसकी बुद्धि इस बात का निर्णय देती रहती है कि परमात्मा का अस्तित्व है। परन्तु वह अपने दैनिक जीवन को सुखी बनाने के लिये भौतिक साधनों का ही अधिकाधिक आधार लेने लगा है और दिन-प्रतिदिन आध्यात्मिकता से दूर होता जा रहा है। यदि आज के जगत् को कोई संज्ञा देनी हो तो वह 'भौतिक जगत्' की ही हो सकती है।

जहां आध्यात्मिकता यह कहती है कि हमें सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, वहां आज भौतिकता से प्रभावित होकर मानव समझता है कि झूठ बोले बिना जीवन को सफल बनाना कठिन है। वह देखता है कि चुनावों के दिनों में झूठे वायदे करना ही नेताओं को सफलता प्रदान करता है। ऐसे ही वह समझता है कि हिंसक बल के बिना शक्ति नहीं हो सकती। इसीलिये तो आज इतने भयंकर और विनाशकारी परमाणु बम बनाये जा रहे हैं और सेनाओं पर अथाह धन खर्च किया जा रहा है। '**ब्रह्मचर्य**' का तो मानो नामोनिशान ही दुनिया से उठ चुका है। तब आप ही विचार कीजिये कि इस जगत् को जो हमारी आंखों के सामने है, यदि 'भौतिक जगत्' नहीं तो और क्या कहेंगे? आध्यात्मिकता के अनुसार तो काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार इन पांच मनोविकारों को जीतने से ही मन की सच्ची शान्ति मिल सकती है। ये **पांच विकार** रूपी माया ही आत्मा के **शत्रु** हैं तथा इन पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। परन्तु आजकल के मनोरंजन के लोकप्रिय साधन जैसे कि उपन्यास, सिनेमा, शराब, क्लब, कैबरे डांस इत्यादि तो उल्टे ही इन विषय-विकारों को उत्तेजित करने वाले हैं। जहां आध्यात्मिकता में विषयों पर काबू पाने को कहा गया है वहां आज के इस जगत् में जीवन का अर्थ ही विषयों की पूर्ति को समझा जाता है। खाने के लिये स्वादिष्ट भोजन, पहनने के लिये नये-नये फैशनेबल डिजाइनों के कपड़े, देखने के लिये सिनेमा, सुनने के लिये फिल्म संगीत इत्यादि को ही जीवन का सुख माना जाता है और इनके बिना जीवन बेकार समझा जाता है। आज का मनुष्य खाने और पहनने के लिये ही जी रहा है ना कि जीने के लिये खा और पहन रहा है। चाहे परिवार में कितनी भी आर्थिक तंगी क्यों न हो, फिर भी इन मनचाहे पदार्थों पर व्यय करने के लिये धन निकल ही आता है। चाहे मनुष्य कितने ही व्यस्त क्यों न हों इन कामों के लिये उन्हें समय भी मिल जाता है। दूसरी ओर परमात्मा का नाम या आध्यात्मिक ज्ञान लेने में न तो मनुष्यों की रुचि है और न ही उन्हें समय मिलता है। कहावत भी प्रसिद्ध है जहां चाह है, वहां राह है (Where there is a will, there is a way)। परन्तु यह भी एक प्रत्यक्ष सत्यता है कि आज के मानव, विज्ञान के आविष्कारों और भौतिक उपलब्धियों से

सम्पन्न होते हुए भी अशान्त और असंतुष्ट हैं और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है सारे संसार में दुःख और अशान्ति के बादल घने होते जा रहे हैं। दिन-प्रतिदिन अब जन-साधारण के लिये जीवन का संघर्ष बढ़ता जा रहा है और जीवन संकटमय बनता जा रहा है, इसका क्या कारण है? यही कि मनुष्य आध्यात्मिकता छोड़कर भौतिकता को अपने जीवन का आधार बनाते जा रहे हैं। जिस प्रकार आत्मा के निकल जाने पर शरीर निष्क्रिय हो जाता है उसी प्रकार आध्यात्मिकता के निकल जाने पर जीवन जीवन नहीं रहता बल्कि नीरस, सारहीन और दुःखी बन जाता है। यहां तक कि कई लोग तो ऐसे जीवन से ऊबकर इसे समाप्त करने की भी सोचने लगते हैं।

दोनों का समन्वय

जीवन यदि एक फूल है तो इसकी सुगन्ध आध्यात्मिकता ही है। जरूरत इस बात की है कि हम स्वयं को शरीर रूपी पांच भूतों का पुतला न समझकर अपने आपको '**आत्मा**' निश्चय करें। जहां आज भौतिकता के प्रभाव में आकर मनुष्य इंद्रियों के विषयों की पूर्ति के लिये ही अपना जीवन बरबाद कर रहे हैं, वहां चाहिये यह कि वे अपनी आत्मा को उन्नत बनाने के लिये **ईश्वरीय ज्ञान** की '**मर्यादाओं**' को अपनायें, उनका उल्लंघन करना बन्द करें। यही जीवन की वास्तविक परिभाषा है। **यदि हम स्वयं को आत्मा न समझकर अपने पंच भौतिक शरीर के पीछे ही लगे रहते हैं तो 'पंच तत्वम् गतः' के अनुसार हम जैसे कि जीते-जी इन पांच भूतों को प्राप्त हो जाते हैं।** हमारा जीवन, जीवन न रहकर मृत्यु के तुल्य बन जाता है। आज के मनुष्यों का ऐसा भोगी जीवन होने के कारण ही उनकी आयु कम हो गई है और अकाल-मृत्यु भी होती ही रहती है। इसीलिये कलियुगी दुनिया को 'मृत्युलोक' अथवा कब्रिस्तान कहा जाता है जबकि सतयुगी देवी-देवताओं की सृष्टि को 'अमर लोक' अथवा परिस्तान कहते थे। वहां किसी की भी अकाले-मृत्यु नहीं होती थी। हम पांच भौतिक शरीर की इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके आत्मा के सच्चे 'स्व' राज्य को प्राप्त करें तभी हमारा जीवन, जीवन कहला सकता है। यही '**मन जीते जगत् जीत**' की उक्ति का वास्तविक अर्थ है। चाहे वैज्ञानिक अपने ऊपर कितना ही गर्व क्यों न करते हों वह समस्त विश्व को अपने आविष्कारों से आश्चर्यचिन्त क्यों न कर देते हों, परन्तु फिर भी आध्यात्मिकता के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा ही नहीं बल्कि समाप्त प्रायः ही समझें। हां, यदि हम आध्यात्मिकता के नियमों से सम्पन्न होकर विज्ञान का उपयोग करें, तो विश्व निर्माण की ओर जा सकता है वरना यह पथ **भ्रष्ट-विज्ञान** ही समस्त विश्व के विनाश का कारण बन जायेगा। आज सभी विश्व-युद्ध से डर रहे हैं। इन विध्वंसकारी भावी विश्व युद्ध के परिणामों का अनुमान करके जन साधारण की बुद्धि चकरा जाती है तथा चरमसीमा तक पहुंचे हुए इस हिंसात्मक विज्ञान द्वारा कला का अन्त दृष्टिगोचर होता है। आखिर इस शोचनीय परिस्थिति का दोष किसको दें? इसके लिये आध्यात्मिकता उत्तरदायी है या भौतिकता? यदि विज्ञान के आविष्कारों को हम निर्माण के कार्यों में लगाते तो हम विज्ञान की देन से असीम शक्ति प्राप्त कर सकते थे तथा संसार को एक नया रूप दे सकते थे। हम आपस में भ्रातृ-भाव, प्रेम, सहिष्णुता की भावना को लेकर चलने और आपसी द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ की भावनाओं को निकाल देने तथा सारे विश्व को एक परिवार का रूप देते तो सारा नक्शा ही बदला हुआ होता। परन्तु भौतिक शक्ति के अभियान में आ जाने के कारण मनुष्य आपस में एक-दूसरे से ईर्ष्या, द्वेष तथा वैर-भाव रखते हैं। आध्यात्मिकता का पतन हो जाने से आपसी प्रेम, भ्रातृ-भाव तथा सहिष्णुता आदि की भावना निकल गई है। इसी का क्रियात्मक रूप भयंकर विश्व-युद्ध की तैयारी के रूप में सामने आया है। आध्यात्मिकता का पतन और मनुष्य का अंधाधुंध भौतिकता को परम शक्ति मान लेना ही विश्व को विनाश की ओर ले जाने का एकमात्र कारण है। देखा जाय तो आध्यात्मिकता तथा भौतिकता का आपस में इतना ही गहरा सम्बंध है जितना आत्मा और शरीर में होता है। आत्मा के बिना शरीर तथा शरीर के बिना आत्मा क्रियाहीन हो जाती है। न तो अकेली आत्मा ही कोई कर्म कर सकती है और न अकेला शरीर ही कुछ कार्य कर सकता है। परन्तु इतना अवश्य है कि इन दोनों में आत्मा मुख्य है तथा शरीर दूसरे नंबर पर है। ठीक इसी प्रकार समस्त विश्व में भी आध्यात्मिकता मुख्य है तथा भौतिकता गौण है। अतः भौतिकता को आध्यात्मिकता के अधीन रखना चाहिये वरना भौतिकता न केवल आध्यात्मिकता के पतन बल्कि सारी सृष्टि के विनाश का कारण बन जाती है।

आज जबकि समस्त विश्व आध्यात्मिकता से शून्य प्रायः हो चुका है तथा हिंसा, द्वेष, स्वार्थ आदि की भावनाओं से ग्रसित हो चुका है तो कौन-सी शक्ति इसे मोड़कर आध्यात्मिकता की ओर ला सकती है? आज तक बहुत से समाज-सुधारकों, याज्ञिकों, हठयोगियों, संन्यासियों, धर्म-संस्थाओं इत्यादि ने इसके लिये प्रयत्न किये, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। वास्तव में यह कार्य स्वयं परमपिता परमात्मा शिव का ही है जो कलियुग के अन्तिम समय में प्रजापिता ब्रह्मा के साधारण तन में प्रविष्ट होकर पहले तो रचयिता (परमात्मा) तथा रचना (इस मनुष्य सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त) का सत्य ज्ञान बताते हैं। फिर योग द्वारा आत्मा को ग्रसित करने वाले काम, क्रोध आदि विकारों को भस्म करके, पवित्र बनाकर उसे आध्यात्मिकता की चरमसीमा तक पहुंचा देते हैं। स्वयं परमात्मा ही मनुष्यात्माओं को फिर से खोये हुए श्री लक्ष्मी-श्री नारायण के देव-पद की प्राप्ति कराते हैं। कल्प (५,००० वर्ष) पूर्व की तरह वर्तमान समय परमात्मा शिव का यह अलौकिक कार्य 'प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय' के माध्यम से चल रहा है। □

वास्तविक गरीबी और इसका निवारण

ब्र.कु. राजकुमार, रायपुर

वर्तमान समय का प्रसिद्ध नारा है "गरीबी हटाओ।" आज के नेता भी इसी नारे द्वारा जनता को आकर्षित करते हैं। परन्तु पहले तो हम समझें गरीबी किसे कहा जाता है एवं हमारे जनप्रतिनिधि किस प्रकार की गरीबी दूर करने की बात करते हैं? क्योंकि गरीबी भी दो प्रकार की होती है—एक है स्थूल धन- संपत्ति की आवश्यकता से कमी की स्थिति, दूसरी है मानसिक गरीबी अर्थात् जीवन में सुख-शान्ति-आनंद की आवश्यकता से कमी की स्थिति। अब हम देखें दोनों में से कौन-से प्रकार की गरीबी को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर दूर किया जाना आवश्यक है?

व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि कई व्यक्तियों के पास स्थूल धन-संपत्ति अपरिमित मात्रा में होते हुए भी वे मानसिक रूप से अशान्त होते हैं, मानों स्थूल संपत्ति के होते हुए भी वे गरीब हैं। क्योंकि मनुष्य को भौतिक धन भी सुख-शान्ति-आनंद प्राप्त करने के लिए ही चाहिए। इससे सिद्ध है कि मनुष्य की यह गरीबी अर्थात् मानसिक गरीबी दूर करना प्रथमतः आवश्यक है। धन-संपत्ति तो इसे दूर करने का माध्यम मात्र है और अल्पकालीन क्षणिक सुख प्राप्त करने का साधन ही है।

यदि वर्तमान समय हम देखें तो इस सृष्टि के सभी मनुष्य-मात्र इस दृष्टि से गरीब ही हैं। अच्छा, अब विचार करें कि इस गरीबी का कारण क्या है? वास्तव में इसका मूल कारण है 'अपवित्रता'। हम जानते हैं आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व इतना तनाव, दुःख, अशान्ति नहीं थी, जितना कि आज है। इससे स्पष्ट होता है कि कभी ऐसा भी समय था जरूर जबकि कोई भी व्यक्ति दुःखी, अशान्त नहीं था। इसीलिए हर व्यक्ति, फिर से ऐसी दुनिया हो—इसकी चाहना रखता है। महात्मा गांधी भी यही चाहते थे कि यह दुःख-अशान्ति सम्पन्न दुनिया समाप्त हो और रामराज्य की स्थापना हो। परन्तु आज की स्थिति ऐसी परिवर्तित क्यों? अर्थात् इतना कलह-क्लेष, तनाव क्यों?

वास्तव में हमारा मूलस्वरूप पवित्र है और हम अपने पवित्र-स्वरूप में शान्त ही हैं। भौतिक विज्ञान में भी एक नियम है कि प्रकृति की हर वस्तु अपने मूलस्वरूप में अपरिवर्तनीय ही है। इसी प्रकार प्रकृति की हर वस्तु स्थिर है परन्तु उसके मूलस्वरूप में जब कोई बाहरी तत्व प्रवेश करता है तो उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार हम आत्माएं भी आदि में पवित्र थीं अर्थात् हमारे अंदर किसी भी प्रकार के विकार आदि नहीं थे। हम अपने निर्विकारी स्वरूप में श्रेष्ठाचारी, पूज्यनीय, सुख-शान्ति सम्पन्न देवताएं थे जिनकी आज के विकारी अपवित्र मनुष्य पूजा-अर्चना करते हुए उनसे सुख-शान्ति मांगते हैं।

परन्तु हम जैसे-जैसे इस सृष्टि में पुनर्जन्म लेते जाते हैं तो हमारी पवित्रता क्षीण होती जाती है और हमारे अंदर धीरे-धीरे काम, क्रोध, लोभ आदि विकृतियां आने लगती हैं। क्योंकि अपने पवित्रस्वरूप में हमारे अंदर अपार शक्ति थी जिसके कारण ये विकृतियां हमसे दूर थीं परन्तु अपवित्रता की स्थिति में हमारे अंदर की शक्तियां समाप्त होती जाती हैं और विकारों के कीटाणु आत्मा पर आक्रमण कर उसे रोगी अर्थात् विकारी बना देते हैं। विकारों से उत्पन्न विकृतियां ही हमारे दुःख-अशान्ति का कारण हैं। वर्तमान समय सभी मनुष्य-मात्र इसी अपवित्रता के कारण दुःख-अशान्ति से पीड़ित हैं अर्थात् मानसिक रूप से गरीब हैं।

अब हमें इस गरीबी से वही छुड़ा सकता है जो हमारे आदिस्वरूप से परिचित हो, जिसके पास पवित्रता-अपवित्रता का ज्ञान हो। यह ज्ञान सिर्फ एक ही ज्ञान के सागर, पतित-पावन, पुनर्जन्म के चक्र से अलग, निराकार परमपिता शिव परमात्मा के पास है। तब ही उन्हें पतित-पावन अर्थात् अपवित्र को पवित्र बनाने वाला कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि स्थूल गरीबी दूर करना तो मनुष्य के हाथ में हो सकता है, परन्तु मानसिक (आत्मा की) गरीबी दूर करने में एक परमात्मा ही समर्थ है, अल्पज्ञ मनुष्य नहीं। स्वयं भगवान् ने ही गीता में भी कहा है—मैं मनुष्य-मात्र का उद्धार करने वाला अर्थात् उन्हें दुःख-अशान्ति से छुड़ाने वाला हूं।

सृष्टि के इस अति महत्वपूर्ण समय पर जबकि सारी मानवता दुःखों से कराह रही है, चारों ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है, तब शिव भगवान् धरती पर पुनः अवतरित होकर हम पर ज्ञान की शीतल फुहारें डाल हमें इन दुःखों से छुड़ाकर सदाकाल की पवित्रता, सुख, शान्ति, आनंद का जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान कर रहे हैं। किस प्रकार? कहां? किसके माध्यम से? आदि प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए निकटस्थ **प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय में पधारें।** □

(पृष्ठ २४ का शेष)

"अब इस सृष्टि की रात समाप्त हो चुकी है ब्रह्म मुहूर्त्त (संगम) का समय है।" परमपिता जब भी मिलता है कहते बच्चे गुडमार्निंग, समय चाहे रात हो, दिन या फिर दोपहर, सायं... नई सुबह का निमंत्रण है आपको। अब जब भी मिले कहिये—गुडमार्निंग।

"गुडमार्निंग, आचार्य परवर।"

"नहीं, कहिए—गुडमार्निंग भाई जी।"

"ओह भाई जी... गुडमार्निंग।" □

सेवा समाचार

व्यक्तित्व विकास एवं नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर

थाना (बम्बई) सेवाकेंद्र द्वारा आयोजित "व्यक्तित्व विकास एवं नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर" में भाग लेने वाले युवा शिविर के अन्त में आयोजित लिखित परीक्षा में प्रश्न-पत्र हल करते हुए।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के थाना (बम्बई) सेवाकेन्द्र की ओर से कालेज के विद्यार्थियों के लिये "व्यक्तित्व विकास एवं नेतृत्व प्रशिक्षण शिविर (Personality Development and Leadership Training Camp)" का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम दिनांक 23 जुलाई से 30 जुलाई तक चला। थाना शहर के 8 कालेजों के लगभग 1300 विद्यार्थियों ने इस शिविर में भाग लेने के लिए आवेदन किया जिनमें से 60 विद्यार्थियों का एक ग्रुप चुना गया। इस ग्रुप में 35 छात्रायें तथा 25 छात्र थे। शिविर का उद्घाटन बम्बई विद्यापीठ के उपकुलपति प्रो० डा० एस० डी० कार्णिक ने किया। शिविर में हर रोज शाम को 7.00 बजे से 8.00 बजे तक व्याख्यान, 8.00 से 8.10 बजे तक जलपान तथा 8.10 से 8.30 बजे तक प्रश्नोत्तर अथवा परिचर्चा का कार्यक्रम चला। इस कार्यक्रम में अनुभवी वक्ताओं ने निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला जिससे सभी प्रशिक्षणार्थी बहुत ही लाभान्वित हुए:—

(1) व्यक्तित्व विकास (मानसिक)
(2) व्यक्तित्व विकास (शारीरिक)
(3) व्यसन-मुक्ति
(4) नेतृत्व के लिये कानून का ज्ञान
(5) संयोजन शक्ति
(6) भाषण करने की कला
(7) सद्गुण संवर्धन तथा
(8) राजयोग

उपरोक्त विषयों पर विभिन्न वक्ताओं ने जो मौलिक विचार प्रस्तुत किये, उनका सारांश इस प्रकार है:—

(1) व्यक्तित्व विकास (मानसिक)

उपरोक्त विषय पर प्रकाश डालते हुए प्रो० बहन रूपा शहा, निदेशक, अकैडमिक स्टाफ कालेज, बम्बई विश्वविद्यालय ने कहा कि सफल नेता उसको ही कहा जायेगा जो कार्यक्षम है, जिसका संयोजन परिणामकारक है। नेता का चरित्र अच्छा होना चाहिए। सफल नेता बनने के लिये इन साता बातों का होना जरुरी है— (1) सम्पूर्ण ज्ञान, (2) सच्चरित्र, (3) समर्थ विचार प्रणाली (Positive thinking), (4) अनुभव, (5) विकसित व्यक्तित्व, (6) पूर्ण आत्मविश्वास और जागरूकता, (7) विद्वत्ता। उन्होंने आगे बताया कि व्यक्तित्व का विकास 5 प्रकार का है— (1) आध्यात्मिक और मानसिक सेवा, (2) मेहनत, (3) आत्मपरीक्षण, (4) शरीर, मन और बुद्धिमत्ता, (5) स्वयं को निराशारहित रखना

(2) व्यक्तित्व विकास (शारीरिक)

डा० मोहन सोहोनी, एम० एस०, सर्जन ने अपने व्याख्यान में स्पष्ट किया कि मानव का जीवन भिन्न-भिन्न आयुमर्यादा (Age group) में बांटा जा सकता है— बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था। शारीरिक विकास के लिये आपने निम्नलिखित तीन प्रकार के व्यायामों पर बल दिया:—

(1) ताकत के लिये दौड़ना, तैरना आदि
(2) चुस्त (Flexibility) बनने के लिये सूर्यनमस्कार, नृत्यकला आदि तथा
(3) योग

(3) व्यसन-मुक्ति

डा० गिरीश पटेल, प्रसिद्ध मनोचिकित्सक, बम्बई ने कहा कि व्यसनों से मुक्त होने के लिये 7 बातें याद रखो:—

(1) फैशन के लिये व्यसनों के गुलाम नहीं बनो।
(2) सदा समाधानी रहो।
(3) कभी भी दुविधा युक्त मनः स्थिति में न रहें।
(4) स्वयं को किसी अच्छे कार्य में व्यस्त रखो।
(5) जीवन का लक्ष्य सदा सामने रहे।
(6) दिनभर में कम से कम 2 मिनट राजयोग का अभ्यास अवश्य करें।
(7) सदैव सात्विक, आशादायी, पुरोगामी विचारों में रमण करो।

आपने नकारात्मक विचारों से छुटकारा पाने के उपायों पर भी विस्तार से चर्चा की।

(4) नेतृत्व के लिए कानूनों का ज्ञान

प्रशिक्षाणार्थियों के समक्ष उपरोक्त विषय पर व्याख्यान् देते हुए एडवोकेट बोखणकर, एम० बी० ए०, एल० एल० बी०, अध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद ने बताया कि नेता को उपनियम (By Laws), निर्णायक मत (Casting Vote), आवश्यक हजेरी (Quorum) आदि बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। आपने बहुत ही सहज और रोचक ढंग से कायदों का विस्तृत ज्ञान सभी विद्यार्थियों को स्पष्ट समझाया।

(5) संयोजन-शक्ति

उपरोक्त विषय को स्पष्ट करते हुए ब्रह्माकुमार प्रमोद ने कहा कि नेता बनने वाले व्यक्ति में प्रसंगावधान कार्यक्षमता, भाषाप्रभुत्व, लिखने की कला, दूरदृष्टि, सुस्वभाव आदि-आदि गुणों का होना आवश्यक है। संयोजन के लिए कार्यक्रम का अनुमानित खर्च खुद तैयार करना जरूरी है।

(6) भाषण करने की कला

इस कला की विस्तृत जानकारी देते हुए प्रो० वसंत बापद एम० एल० ए०, अध्यक्ष, शिक्षक क्रान्ति दल ने प्रशिक्षाणार्थियों को बताया कि भाषण करने से पूर्व उस विषय पर नोटस लिखें। इसके लिए रोज पढ़ना आवश्यक है। यह कला आत्मसात करनी पड़ती है। निडरता जरूरी है। शब्द स्पष्ट और आवाज असरकारी हो। उसमें रमणीकता की लहरें भी हों। छोटे-छोटे उदाहरणों से सार को स्पष्ट करो। अनुभव के बोल हों। भाषण का अन्त भी आकर्षण होना चाहिए।

मोहाली में आयोजित "चरित्र निर्माण आध्यात्मिक प्रदर्शनी" का उद्घाटन करते हुए भ्राता बी.बी. कक्कड़, संयुक्त सचिव, पंजाब सरकार।

(7) सद्गुण संवर्धन

इस विषय पर चर्चा ब्र० कु० उषा बहन, निदेशिका, सांस्कृतिक कार्यक्रम, ई० वि० वि० ने की। आपने बताया कि पूर्ण विकसित व्यक्तित्व में निर्विकारिता होती है और ऐसा व्यक्ति सर्व गुणों से सम्पन्न होता है। सर्वगुण सम्पन्न बनने के लिए शान्ति बहुत जरूरी है। जब शान्ति मन में प्रवेश करती है तब मन में रचनात्मक विचारों की लहरें दौड़ती हैं। आपने बहुत ही मधुर एवं रमणीक तरीके से ईश्वरीय ज्ञान को भी स्पष्ट किया जिससे सभी लाभान्वित हुए।

(8) राजयोग

ब्र० कु० लाजवंती, राजयोग शिक्षिका ने 'व्यक्तित्व विकास में राजयोग की भूमिका' को स्पष्ट किया। आपने राजयोग के नियम भी बताये और अपने व्याख्यान् के अन्त में सभी को राजयोग का अभ्यास भी कराया।

शिविर के अन्तिम दिन शिविरार्थियों से एक घण्टे की लिखित परीक्षा ली गई। अगले दिन शिविर के समाप्ति समारोह का आयोजन हुआ जिसमें उपरोक्त शिविर में उत्तीर्ण सभी प्रशिक्षणार्थियों को ब्र० कु०गोदावरी बहन ने प्रमाण-पत्र प्रदान किये तथा प्रथम तीन प्रशिक्षणार्थियों को "गोविंद मानव उत्कर्ष सेवा संघ" ट्रस्ट के ट्रस्टी भ्राता मगन भाई ठक्कर ने ट्राफी प्रदान की।

इस आयोजन के उपरान्त तीन-दिवसीय राजयोग शिविर का कार्यक्रम भी चला जिसमें 23 विद्यार्थियों ने भाग लिया जो राजयोग अभ्यास के लिये सेवाकेन्द्र पर नियमित रूप से आ रहे हैं।

देहली (पहाड़ गंज) : न्यु इण्डिया मूवमेन्ट के स्वामी पूर्ण स्वतन्त्र जी को ब्र० कु० शील बहिन राखी बांधते हुए।

रायपुर :: डॉ० एम० एम० लालोरिया, कुलपति रविशंकर विश्वविद्यालय को पावन स्नेह में बांधती हुई ब्र० कु० प्रीति बहिन

हाथरस : ब्र० कु० सावित्री नगर पालिका अध्यक्ष भ्राता गोपाल प्रसाद जी को राखी बांधते हुए।

जीन्द : ब्र० कु० विजय जिलाधीश भ्राता पी० पी० सिंह साहनी जी को राखी बांधने के पश्चात आत्म स्मृति का तिलक देते हुए।

मेरठ : महापौर भ्राता अरुण जैन जी को राखी बांधते हुए ब्र० कु० मंजु जी।

नई दिल्ली : ब्र० कु० बहिनें, बहिन किरण बेदी, आई० पी० एस० को स्नेह की सूचक राखी बांधती हुई।

इन्दौर : ब्र० कु० आरती प्रसिद्ध टेस्ट खिलाड़ी भ्राता नरेन्द्र हिरवानी जी को राखी बांधते हुए।

भोपाल ब्र० कु० अवधेश रक्षा बंधन के पुनीत पर्व पर राजयोग भवन में प्रशासकीय अधिकारियों के समक्ष प्रवचन करते हुए।

मद्रास : सेन्ट्रल जेल में रक्षाबंधन के
कु० शिवकन्या कैदियों के समक्ष प्रवच
पुलिस अधिकारीगण विराजमान हैं।

रायपुर : अखिल भारतीय नैतिक जागृति युवा अभियान का शुभारम्भ समारोह का दृश्य। भ्राता डॉ० एम० एम० लालोरिया जी, कुलपति रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर, ब्र० कु० बहिनों को कलश प्रदान करते हुए। पास में भ्राता गंगाराम जी शर्मा, अध्यक्ष रायपुर विकास प्राधिकरण, युवाओं को शिव ध्वज प्रदान करने की तैयारी में।

चिरकुण्ड : नैतिक जागृति युवा अभियान कार्यक्रम के अन्तर्गत निकाली गई साईकल रैली का दृश्य।

के पावन अवसर पर ब्र०
वचन देते हुए। मंच पर

इन्दौर : ब्र० कु० बिन्दु तथा ब्र० कु० शशी झुग्गी झोपड़ी निवासियों को पावन राखी बांधते हुए।

कोटा : भगवत सिंह नगर स्थित 'सरस्वती कुष्ठ आश्रम' में ब्र० कु० निर्मला एवं मनोरमा रोगियों को राखी बांधते हुए।

राजनांदगांव : उप-जेल में कैदियों को राखी बांध रही हैं ब्र० कु० पुष्पा।

इन्दौर : सेवा मन्दिर में अंध, मूक, बधिर बच्चों को ब्र० कु० शशी एवं बिन्दु राखी बांधती हुई।

पटना : ब्र० कु० निर्मल पुष्पा भ्राता दिलकेश्वर राम, मंत्री स्वास्थ्य, परिवार कल्याण एवं पशु-पालन, बिहार को आत्म-स्मृति का टीका देते हुए।

माऊण्ट आबू : ब्र० कु० प्रतिमा भ्राता मुहम्मद अबजल कुरैशी को स्नेह-सूचक राखी बांधते हुए।

संगरूर : उपायुक्त भ्राता सखन सिंह जी को राखी बांधने के पश्चात ईश्वरीय साहित्य देती हुई ब्र० कु० हरजीत बहिन।

बहमपुर में सेवाकेंद्र के नव निर्मित भवन 'शान्तिकुंड' का उद्घाटन करते हुए ब्र.कु. दादी चन्द्रमणि तथा ब्र.कु. मोहिनी बहन।

कटक : उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भ्राता आर० एम० रथ जी को ब्र० कु० कुलदीप आत्म स्मृति का टीका लगा रही हैं।

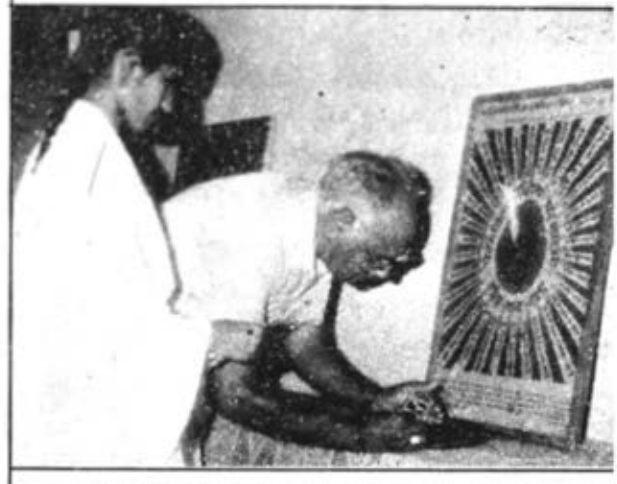

डबरा में आयोजित "आध्यात्मिक प्रदर्शनी" का उद्घाटन करते हुए भ्राता बी.एस. शर्मा, नगरपालिका अधिकारी।

पठानकोट : सीनियर सब जज भ्राता हरभजन सिंह जी राखी बंधवाने के पश्चात् ब्र० कु० बहिनों के साथ परिवार सहित दिखाई दे रहे हैं।

सिंगरौली : आर० आर० एस० के आफीसर्स क्लब में प्रवचन करती हुई ब्र० कु० नीता बहिन। उन के बाएं उपस्थित हैं आशा बहिन तथा भ्राता भाटिया जी।

हैदराबाद : 'पॉजिटिव हैल्थ' प्रदर्शनी में चित्रों पर व्याख्या करती हुई ब्र० कु० वन्दना बहिन।

मद्रास : ब्र० कु० मीना तथा मंजु पाण्डीचेरी विश्वविद्यालय के उपकुलपति भ्राता के० वेन्कट सुब्रामन्यम आबू में होने वाले सम्मेलन में भाग लेने के लिए निमंत्रण दे रहे हैं।

नई दिल्ली : संसद सदस्य भ्राता चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी को राखी बांधती हुई ब्र० कु० राज।

बल्लबगढ़ आध्यात्मिक संग्रहालय का उद्घाटन ब्र.कु. रुक्मिणी बहन तथा अन्य मोमबत्ती जलाकर करते हुए।

गिदड़बाहा (मण्डी) सेवाकेंद्र पर महिला वर्ग के लिये आयोजित कार्यक्रम में ब्र.कु. शीला, समाज सेविका बहन बधवार तथा अन्य ग्रुप फोटो में।

समस्याओं का समाधान– है बहुत आसान

□ ब्र.कु. सूर्यमुखी, रूद्रपुर

समस्याएं ही समस्याएं! चारों ओर समस्याएं! समस्याओं के गहरे सागर में डूबा हुआ है विश्व का हर प्राणी। एक ओर जनसंख्या की बाढ़, दूसरी ओर गरीबी के तूफान। कमरतोड़ महंगाई की बरसती आग की चपेट में आ गया है जन-जीवन। साथ-साथ नशीले पदार्थों का सेवन, वातावरण प्रदूषण, अस्त्र-शस्त्रों की होड़। परिणामस्वरूप मानसिक तनाव से बढ़ी अशान्ति व रोग, अकाले मृत्यु व भय, धर्म-भेद, रंग-भेद आदि-आदि अनेक समस्याएं चारों ओर नजर आती हैं। कहीं भी सुख-शान्ति का वातावरण, चैन की सांस नहीं है इस समस्याओं भरी दुनिया में। विश्व का ढांचा ही बदल गया है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं ने तो इसकी नींव को ही हिला दिया है। फलस्वरूप वैर-विरोध, तनाव, स्वार्थ, आपसी फूट के कारण नैतिक पतन व रोगों को ही बढ़ावा मिला है।

अज्ञानता के इस अंधेरे में, समस्याओं भरी जिंदगी को अब आशा की किरण चाहिये, समाधान चाहिये...। वो किरण है–समस्याओं का निदान। यहां हम इसी बात की चर्चा करेंगे।

समस्याएं तो हैं परन्तु अब बढ़ती समस्याओं का कारण, प्रथम हम स्वयं ही हैं। क्योंकि समस्याएं हमारी हैं, हम नहीं तो हमारी समस्याएं भी नहीं हैं। हमें पहले यही चिंतन करना होगा–हम हैं कौन? कहीं हम ही तो समस्याओं के जन्मदाता नहीं हैं? ये समस्याएं कहां से हमारे पास आई हैं? इसका मूल कारण यही कहा जायेगा–स्वयं के सत्य परिचय का अभाव, स्वयं की शक्तियों का दुरुपयोग, स्वरूप और लक्ष्य का अज्ञान। स्वयं को पहचाने बिना कर्त्तव्यों का बोध नहीं हो सकता। कर्त्तव्यों का पालन न होने पर ही संघर्ष पैदा होता है।

जब हम स्वयं को 'आत्मा' निश्चय करते हैं तो मानो हम प्रत्येक प्राणी मात्र के शुभचिंतक बन रहे हैं। सभी को 'आत्मा' रूप में देखने से हम भाईचारे की नींव को मजबूत कर देते हैं। भाईचारा आपसी स्नेह, सहयोग का प्रतीक है और इसका आधार है हमारा आत्मिक दृष्टिकोण। **देह और देह का परिचय, देह के धर्मों व सम्बंधों का ज्ञान तो हमें पहले भी है। कमी है आत्मिक परिचय की, अभाव है आत्मिक स्नेह का। यही अभाव समस्याओं का बीज है** जिसे प्रत्येक मनुष्य ने स्वयं ही अपने जीवन में बो लिया है। अब इन समस्याओं का एक ही समाधान है, वो भी बहुत आसान है। क्या? "राजयोग"।

हर समस्या का समाधान–'राजयोग'

राजयोगी बनकर ही स्थायी सुख व शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। राजयोगी अर्थात् अपनी कर्मेन्द्रियों के भी अधीन नहीं बल्कि राजा और परमात्मा से सम्बंध जोड़कर तो वह विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान करने लग जाता है। अपने को हर परिस्थिति के अनुसार ढालने में समर्थ होता है राजयोगी। जीवन में सभी गुण आ जाते हैं। ईश्वरीय शक्तियों की प्राप्ति जीवन की सहज सफलता का आधार बन जाती है क्योंकि हमें राजयोग के द्वारा ही ये शक्तियां प्राप्त होती हैं जबकि हम सत्य पहचान के आधार पर अपना सम्बंध परमपिता परमात्मा से जोड़ते हैं।

विचारनीय बात है, जिस प्रकार टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, टेलेक्स आदि ने माइक्रो वेव लिंक (Micro Wave Link) के आधार पर भौगोलिक दूरियों को समेट दिया है, इसी प्रकार हम भी आध्यात्मिक शक्ति–'राजयोग' के द्वारा अपनी पवित्रता, महानता, शान्त स्वस्थिति के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने में किसी भी व्यक्ति तक अपनी शुभकामनाओं व शुभ भावनाओं के प्रकम्पनों को पहुंचा सकते हैं। इसके लिये केवल राजयोग या सच्ची मन की साधना की आवश्यकता है, न कि वैज्ञानिक साधनों की। यहां भी बुद्धि के विस्तार, संकल्पों के विस्तार को समेटना होता है।

सर्व प्राप्तियों का आधार–राजयोग

हर व्यक्ति चाहता है वह सुखी हो, सम्पन्न हो, उसे सर्व प्राप्तियां हों। जबकि प्राप्तियों का सम्बंध किसी के भी श्रेष्ठ पुरुषार्थ पर निर्भर है जिसका बीज कर्म है। 'राजयोग' कर्मों को अलौकिक बना देता है, अलौकिक कर्म–सुखदायी कर्म सुख प्रदान करते हैं। आत्मा को तृप्त करने वाला अतीन्द्रिय सुख जब उसे मिलने लगता है तो उसके मन की पवित्रता और कर्मों की श्रेष्ठता आपस में मिलकर ईश्वरीय प्राप्तियों का भी पात्र बना देती है। यही ईश्वरीय प्राप्तियां किसी भी समस्या का सहज साधन हैं इसके लिये ही ये कहावत बनी है–

जिनका साथी हो भगवान्,
उन्हें क्या रोकेंगे आंधी और तूफान।

तूफानों में भी राजयोगी अपनी जीवन नौका को ज्ञान, योग के चप्पुओं से चलाकर उस पार ला खड़ा करते हैं जिस पार जाने के लिए मनुष्य को कठिन साधना करके भी सफलता नहीं मिलती।

राजयोग से स्व-परिवर्तन और विश्व-परिवर्तन

परिवर्तन ही यहां का अनादि नियम है। परिवर्तन बिना किसी भी समस्या का हल नहीं। समस्या चाहे अपनी हो या दूसरों की, चाहे विश्व की–राजयोग से हमें स्व-परिवर्तन का बल मिलता है,

हमारे दृष्टिकोण बदलते हैं, हमें बुराई का ज्ञान हो जाता है। बुराई अपनी हो या दूसरे की उसके परिवर्तन का संकल्प मन में उठने लगता है। और परमात्मा से बुद्धियोग जुड़ते ही उस संकल्प को और भी ईश्वरीय बल मिल जाता है जिसे आध्यात्मिक भाषा में संकल्पों की सिद्धि भी कहा गया है। इसकी विधि राजयोग ही है।

हमारा स्वयं का परिवर्तन अनेक आत्माओं के परिवर्तन का प्रेरक तो हो ही जाता है परन्तु हमारी प्राप्तियां और राजयोगी जीवन की सर्वश्रेष्ठ प्राप्ति–'पवित्रता' सभी के अन्तःकरण को बदल देती है। हृदय परिवर्तन हो जाता है परमात्मा के पावन प्यार को पाकर, दिल से दुआएं निकलने लगती हैं। सच्चा-सच्चा स्नेह भर जाता है जीवन में जो विश्व की कोटि-कोटि आत्माओं तक पहुंचकर भी समाप्त नहीं होता। यही अविनाशी परिवर्तन विश्व-परिवर्तन का आधार बन जाता है।

सदा ही समाधान सिखाता है राजयोग

राजयोग से हमें हमारे सभी सवालों का जवाब मिल जाता है। प्रश्नों की लाइन ही मन को प्रसन्नचित्त रखने में बड़ी बाधक है। क्योंकि राजयोग के द्वारा हम परमात्मा के इतना समीप पहुंच जाते हैं कि देह के भान से परे विदेही बन, अशरीरी होकर अनेक दिव्य अनुभव तो करते ही हैं परन्तु इसके साथ-साथ अपने को बहुत हल्का (किसी भी बोझ से परे) बना लेते हैं। हल्कापन, अनासक्तभाव, साक्षीभाव, न्यारापन–इसी अशरीरीपन के रूप हैं। हर बात में हल्कापन, वस्तु, पदार्थों, वैभवों में अनासक्ति, परिस्थितियों में साक्षीभाव, सम्बंधों में न्यारापन ही हमारी हर समस्या का समाधान है।

अब हमें चाहिये हम सच्चे राजयोगी बनकर अपने मूलस्वरूप में टिककर लक्ष्य प्राप्ति की स्मृति में परमधाम चलने से पहले अपने को सम्पूर्ण पावन, दिव्य गुणमूर्त्त बनाने में लग जायें। हमारी हर कमी, कमाल में बदल जाये तो हर समस्या समाधान में बदल जायेगी। तब हम कह सकेंगे–सचमुच शिवबाबा, आपने तो विश्व की सभी समस्याओं का समाधान पल-भर में आसान कर दिया है। □

फूल-सा चेहरा और कमल-सा जीवन

ब्र.कु. आर.एल. श्रीवास्तव, रायपुर

सुंदरता सबको प्यारी है। सुंदरता मनोभावों की सुंदरता पर आधारित है। मन के भाव जितना कोमल और सुंदर होंगे, उतना ही चेहरा फूल-सा खिला हुआ एवं हर्ष से भरा हुआ होगा। विचार और मनोभाव चेहरे की खूबसूरती पर असर डालते हैं। जिन्हें सुंदर एवं आकर्षक बनना है; जिन्हें अपने व्यवहार में श्रेष्ठता लानी है, वे अपने मन से कुविचारों को निकाल दें; चेहरा आप ही आप फूल जैसा खिल जायेगा। दिव्यगुणों की खुशबू व्यवहार में तभी आयेगी जब दिव्यगुणों से दिल से प्यार होगा। बुद्धि में ईश्वरीय ज्ञान टपकता रहे तो व्यवहार में आकर्षण एवं खुशबू आ जाती है और जीवन कमल समान बन जाता है। चलन रॉयल हो जाती है।

विकार चेहरे को विकराल बनाते हैं। विकार चेहरे को विद्रूप कर देते हैं। विकार जीवन को दुर्गुणी बना देते। विकारों को आज तक कोई मनुष्य-मात्र भगा नहीं पाया। यह शक्ति तो केवल सर्वशक्तिवान् परमात्मा में ही है। विकारों से लड़कर उन्हें भगा देने की युक्ति का ज्ञान तो ज्ञान सागर परमात्मा शिव के ही पास है। जिसे वे प्रजापिता ब्रह्मा के मुख कमल से दे रहे हैं। इस ज्ञान के प्रभाव से अब विकार अपना बिस्तर बांधने लगे हैं। यह अनोखी सफलता सिद्ध करती कि परमात्मा का अवतार हो चुका है और उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया है प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के माध्यम से।

अब परमात्मा शिव ने बीड़ा उठाया है कि आत्माओं से विकारों को उखाड़ फेंका जायेगा। आलस्य का नाश करने के लिए उन्होंने अपने बच्चों को तीन बजे प्रातः जगाना शुरू किया। कुविचारों से आत्माएं मुक्त रहें, इसके लिए एकांत में राजयोग का अभ्यास कराते। ब्रह्ममुहूर्त्त में किसी भी प्रकार के व्यर्थ विचार न चलें, इसके लिए शान्तिधाम, सुखधाम और अपना परिचय दिया। दिनचर्या सही दिशा में चले, इसके लिए अमृतवेले ही अपने सद्गुणों के अभ्यास की विधि बताई। यह कलियुगी सृष्टि कांटों का जंगल अब चमन बन जायेगी। इस विश्व के रंगमंच पर हर्षित फूल से चेहरे जगह-जगह पर परमात्मा का सत्य परिचय देते हुए मिलेंगे। नरक समान संसार में कमल जैसे खिले चेहरे बाबा के पढ़ाये हुए बच्चे सबको दिखेंगे। ईश्वरीय विश्वविद्यालय के पढ़े हुए विद्यार्थी दुनिया से अलग ही दिखेंगे तब लोग समझेंगे कि पढ़ाने वाली कोई अद्भुत शक्ति ही है।

विकारों का विनाश होते ही पुरानी दुनिया का विनाश हो जायेगा और खिले हुए चेहरों वाला अल्लाह का बगीचा लग जायेगा। यही सतयुग होगा। कितना सुहावना सतयुग होगा! विकारों का विनाश करके जो उसमें जायेंगे, उनके सुखों का वर्णन कौन कर सकेगा! परमात्मा ऐसी पढ़ाई पढ़ा रहे हैं। आइये, इस मनुष्य से देवता बनने की पढ़ाई पढ़ने के लिये अपने निकटवर्ती प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय में प्रवेश लें। इस ईश्वरीय पढ़ाई से चेहरा फूल की तरह खिल जायेगा और जीवन कमल समान न्यारा और प्यारा बनेगा। □

आध्यात्मिक कहानी

गुडनाईट नहीं, गुडमार्निंग!

□ ब्र.कु. मुरारीलाल त्यागी, त्रिनगर, दिल्ली

फोन की घंटी बजी। "हैलो"—उसने रिसीवर उठाते हुए कहा।

"गुडनाईट"—दूसरी तरफ से आवाज आई। आवाज किसी बालिका की लग रही थी।

"कौन?"

"एक आत्मा।"

"लेकिन आत्मा के शरीर का भी तो कुछ नाम होगा?"

"है तो अवश्य, पर अभी बताऊंगी नहीं।"

"मैंने पहले कभी यह आवाज सुनी नहीं बालिका।"

"हां, मैं एक बालिका हूं इतना तो आप जान ही गए।"

"लेकिन इतने से मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं, यदि आपको मुझसे कुछ कार्य है?"

"पहला निवेदन तो यह है कि वास्तव में मैं एक बालिका हूं और आप मुझे बालिका कहकर ही पुकारें तो अधिक अच्छा रहेगा, आचार्य प्रवर।"

"अच्छा, आप मेरे बारे में इतना जानती हैं कि मैं आचार्य हूं।"

"जी हां, मैं आपके सम्बंध में बहुत जानकारी रखती हूं।"

"क्या आपके पिता या आप सी.आई.डी. में काम करते हैं?" आचार्य ने मुस्कराते हुए कहा।

"ऐसा नहीं है आचार्य जी, बात लंबी हो जाएगी। पापा आ रहे हैं, फोन रखती हूं। गुडनाईट!" और फोन कट गया।

आचार्य रामानन्द सोचते रह गए कि यह नई पहेली क्या थी। और उन्होंने अपना ध्यान बंटाने के लिए अपनी पुस्तक उठाकर अध्ययन करना प्रारंभ कर दिया। रात का समय था। आचार्य जी रात-रातभर जागकर अध्ययन करते थे, लिखते थे। इस बातचीत से वे कुछ विचलित से हुए किन्तु कुछ ही क्षणों में 'गुडनाईट' की बात को भूलकर अपने कार्य में उलझ गए।

आचार्य जी शिक्षा, संस्कृति एवं लेखन की कला के धनी हैं, किन्तु आजकल उन्होंने रामायण, महाभारत, वेद-शास्त्र, पुराण—सबको ताले में बन्द करके रख दिया है। केवल 'गीता' की एक मोटी-सी पुस्तक उनकी मेज पर रखी है। वे उसको ही पढ़ते हैं। उसी पर व्याख्या करते हैं और विरोधाभास में उलझ भी जाते हैं।

गीता पढ़ते-पढ़ते जब एक दिन अचानक एक श्लोक उनके सामने आया जिसका अर्थ था—"मैं शास्त्रों, तीर्थों, दान, पूजा-पाठ, व्रत, ध्यान आदि से नहीं मिलता। और गुरु गुंसाई भी मेरा सत्य परिचय नहीं देते। मैं अपना परिचय आप ही देता हूं।" इस श्लोक को पढ़ने के बाद आचार्य जी ने गीता भी बन्द कर दी और एक नया प्रश्न उनके मन-पटल पर छा गया—"अपना परिचय आप देता हूं... तो कब...? कैसे...? कहां...? इस प्रकार के प्रश्न उभरने लगे आचार्य के मन में। फिर एक श्लोक कौंध गया था उनके सामने—"मैं साधारण बूढ़े तन में प्रवेश करता हूं, करोड़ों में से कोई विरला मुझे पहचानता है और उनमें से भी कोई विरला मेरी मत (श्रीमत) पर चलता है।"

"युगे-युगे आता हूं" आदि ऐसी अनेक बातें थीं जो आचार्य को विवश करती थीं। यह सोचने के लिये कि किसे सत्य माना जाए? एक के बाद दूसरा विरोधाभास। कभी-कभी तो आचार्य को लगता कि सब ग्रंथ, गुरु-गुसाई एक अन्धेरी गली-सी है जहां चारों तरफ हाथ मारते रहने पर भी कुहासा छटता ही नहीं।

किन्तु अचानक ही एक दिन उन्हें वह कुंजी मिल गई जिसे खोलने पर परमपिता परमात्मा के समस्त रहस्य खुलकर सामने आ गए और आचार्य ने उन रहस्यों को अन्य आत्माओं को भी बताना शुरु कर दिया।

"गुडनाईट, आचार्य जी!"—फोन का रिसीवर उठाते ही वही आवाज फिर सुनने को मिली।

"गुडनाईट बालिके!"

"आचार्य जी, आपसे कुछ शंका समाधान करना चाहती हूं।"

"हां! अवश्य... तुम पूछो, हम से संभव हो सका तो आपकी शंका का समाधान अवश्य करेंगे।"

"आपने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि आत्माभिमानी बनिए, देहाभिमानी नहीं।"

"क्या तुम यह बात समझ सकोगी बालिके... अभी तुम्हारी उम्र ही क्या होगी?"

"किन्तु आचार्य जी, आपने तो इसी व्याख्यान में यह भी कहा था कि आयु तो शरीर की होती है, आत्मा की नहीं। आत्मा अनेक जन्मों के संस्कार साथ लिए हुए होती है।"

आचार्य सावधान हो गए... उन्हें लगा कि यह कोई नन्हीं बालिका नहीं है या फिर बड़ी प्रतिभाशाली और उत्कट जिज्ञासा से भरपूर है।

"आप खामोश हो गए आचार्य जी, मैंने आप से प्रश्न पूछा और आपने कोई उत्तर ही नहीं दिया?"

"हां बालिके,... मैं कुछ सोच रहा था कि आपको क्या उत्तर दूं?"

"आचार्य जी, आप एकदम 'तुम' शब्द से 'आप' पर कैसे आ गए? आप मुझे 'तुम' कहकर ही पुकारिये। मैं तो बहुत छोटी हूं... यह 'आप' सम्बोधन तो बड़ों के लिए होता है।"

"आत्मा की कोई उम्र नहीं होती, इसलिए आत्माभिमानी होकर मैं, आपको अपने बराबर मानकर चलूं तो आपको स्वीकार करना होगा। जब आप इतने गुह्य और गहन विषयों में डूबना चाहती हैं तो निश्चय ही मुझे आपको... 'आप' शब्द का सम्बोधन देना होगा, भाई।"

"लीजिए, एक नया सम्बोधन दे डाला 'भाई'!"

"हां, आप हमारे भाई ही तो हैं। जब हम उस परमपिता को अपना पिता मानते हैं तो आपस में भाई-भाई ही तो हुए न?"

"लेकिन इस नाते से मैं बहिन भी तो हो सकती हूं?"

"वही तो देहाभिमान है। देहाभिमान में आने से आत्मा भाई-बहन, माता-पिता, पति-पत्नी आदि सम्बंधों में आती है जिससे मोह, पैदा होता है। किन्तु आत्माभिमानी ही तो सब भाई-भाई हुए... आत्मा का कोई लिंग नहीं होता, स्त्री का शरीर धारण किया तो स्त्री, पुरुष का किया तो पुरुष। किन्तु आत्मा-आत्मा भाई-भाई। जैसे नारा लगाते हैं—हिन्दी चीनी भाई-भाई। वह हिन्दी चीनी बहिनें भी तो हैं, पर भाई-भाई ही क्यों कहा जाता है? हम अपने स्वरूप को चाहे न पहचानें किन्तु उसके मूल में यह भावना रहती है। हां, एक बात यह तो बताइये कि आपने मेरा व्याख्यान कहां सुना था?"

आचार्य जी, मम्मी मेरी तरफ कमरे में आ रही हैं... फोन रखती हूं... गुडनाईट! और फोन कट गया।

आचार्य जी ने फोन की बात दिमाग से निकाल दी और परमपिता की याद में खो गए। कुछ देर बाद एक साक्षात्कार हुआ उन्हें कोई बालिका फोन पर शिवबाबा (परमपिता परमात्मा) से बातें कर रही हैं और बाबा अपनी मधुर वाणी में उसे उत्तर दे रहे हैं। कुछ देर बात करने के बाद उस बालिका ने कहा—अच्छा, बाबा... मेरी मम्मी आ रही है... मैं आप से फिर बात करूंगी। गुडनाईट!

आचार्य जी ने उस बालिका को पहचान लिया। उसके नाम, काम, धाम सबकी जानकारी मिल गई। अब वह रहस्य, रहस्य नहीं रहा किन्तु वह बालिका को उसका पता, नाम बताकर चौंका जरूर सकते हैं।

"गुडनाईट, आचार्य जी!"

"गुडनाईट, सत्यवती जी!"—अगली रात फोन का रिसीवर उठाते ही आचार्य जी ने नाम से पुकारा था उसे।

सत्यवती आचार्य जी के मुख से अपना नाम सुनकर आह्लादित हो उठी। कुछ क्षणों तक वह उसी आनन्द के झूले में झूलती रही।

"क्यों! कहिए... मैंने गलत तो नहीं कहा?"

"आचार्य जी ने फिर प्रश्न किया?"

"आचार्य जी, लेकिन मैं हैरान हूं। आप बहुत महान् हैं, आचार्य परवर।"

"आप भी महान् हैं, सत्यवती जी।"

"वह कैसे? मैं महान् कैसे हो सकती हूं।"

"जब हम उस परमपिता परमात्मा के बच्चे बनते हैं तो उनके सभी गुण हमारे में आ जाते हैं। जैसे वह प्रेम का सागर है, शान्ति का सागर है, त्रिकालदर्शी है। यदि वह त्रिकालदर्शी है तो क्या हम भी तो मास्टर त्रिकालदर्शी बन सकते हैं। उस परमात्मा ने आपको भी अपनी पहचान दी और मेरी भी। उसी ने आपका परिचय करा दिया है मुझसे। मैं आपके बारे में और भी बहुत-सी बातें बता सकता हूं।"

"अच्छा! आचार्य जी, कमाल की बात है यह तो।"

"आप बहुत उदास, परेशान रहती थी क्योंकि आपके लौकिक पति का देहान्त हो गया था। आप कुछ वर्ष शोक संतप्त रहीं। फिर आपने अपने आपको परमात्मा के हवाले कर दिया...। तब से आपने उस अविनाशी पति को अपना पति बना लिया, आज फिर सदा सुहागिन हो गई, मीरा की तरह। उसके साथ जिस सम्बंध का आनन्द हम लेना चाहें, ले सकते हैं। भाई सखा, पिता-माता-सेवक साजन और सजनी आदि जिस रूप में सत्य मन से उसे चाहते हैं वह उसी रूप में हमारी सहायता करता है।"—आचार्य बोले जा रहे थे और सत्यवती गहरे आनन्द में डूबती जा रही थी। वह मौन रहकर ईश्वर चर्चा में खो गई थी और आचार्य उसका परिचय दे रहे थे—"आत्मा को परमात्मा की गोदी में डालकर उसका हो जाना ही आत्माभिमान है, सत्यवती। दुनिया में आज उन्हीं का नाम आदर, सम्मान से लिया जाता है जो उसके हो गए। मीरा, सूरदास, कबीर, तुलसी, गुरुनानक देव, गांधी जी, स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, आदि को आज भी महान् मानते हैं। सिकन्दर, औरंगजेब आदि उनके सामने कुछ भी नहीं थे।"

"क्षमा कीजिए आचार्य जी, अब सिर्फ एक प्रश्न पूछती हूं।"

"पूछिए, सत्यवती जी, लेकिन आप सब कुछ जानकर अनजान बनती हैं?"

"नहीं आचार्य परवर, मैंने तो सारा ज्ञान आपके व्याख्यानों से सीखा है, आपके आचरण से सीखा है। किन्तु आपको यह ज्ञान-धन कहां से मिला...? वेद-शास्त्रों से तो यह प्राप्ति संभव नहीं थी। वह तो दुनिया में बहुत लोग पढ़ते हैं।"

"हां! इस संसार के रंगमंच पर केवल एक संस्था ही है जो ईश्वर का सच्चा ज्ञान देती है उस संस्था का नाम है—**प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय**। इसकी हजारों शाखाएं हैं... नगर-नगर में, विदेश में और दिल्ली में भी।"

"क्या मैं भी वहां जा सकती हूं?"

"वह तो परमात्मा का घर है। वहां कोई भी जा सकता है, चाहे वह किसी भी देश, काल, जाति-पाति धर्म सम्प्रदाय का हो। सर्वआत्माओं का पिता है वह।"

"अच्छा आचार्य जी, गुडनाईट।"

"गुडमार्निंग कहिए... सत्याजी।"

"यह आज नई बात क्यों?"

शेष पृष्ठ १२ पर

बराबरी या एकता

आज के घोर कलियुगी विश्व में इतना तो घोर अत्याचार, अन्याय और अनर्थ हो रहा है कि मानवता व्याकुल होकर त्राहि-त्राहि कर रही है। अब इस दुनिया में तो मनुष्यों के नाक में दम हो चुका है और उसका जीना भी दूभर हो गया है। ऐसे में जब कभी भी न्याय के नाम पर किसी के लिये—'सबको बराबर के हक' अथवा 'सभी मनुष्य एक समान हैं' इत्यादि के नारे बुलन्द किये जाते हैं तो मनुष्य उनको झट से अपना लेते हैं। 'डूबते को तिनके का सहारा' वाली उक्ति के अनुसार निरन्तर अन्याय की चक्की में पिसने तथा अत्याचार के कोल्हू में पेरे जाने वाले पीड़ित और निराश मनुष्यों को ऐसे नारे में आशा की एक धुंधली सी किरण दिखाई पड़ती है, सम्भवतः इसीलिये वे बिना अधिक सोच-विचार किये ही 'मनुष्यों में बराबरी' की इस विचारधारा को न्याय और सत्य पर आधारित मानते हुए तुरन्त ही अपना लेते हैं। कई व्यक्ति तो इस कल्पना को साकार करने के लिये हर प्रकार की कठिनाइयों का सामना करने यहां तक कि अपनी जान की बाजी भी लगा देने को तैयार हो जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि कलियुग में तो धर्म के नाम पर अधर्म और न्याय के नाम अन्याय भी होता रहता है।

जरा इस '**बराबरी**' की बात पर ही विचार कीजिये। राजनैतिक क्षेत्र में आप देखेंगे कि कहने को तो अमेरिका जैसे बड़े और सिंगापुर जैसे छोटे सभी देशों को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने का बराबर का हक है। किन्तु, सुरक्षा परिषद् की असली सत्ता इस संघ के संस्थापक सदस्यों के हाथों में ही है जिन्हें '**वीटो**' (Veto) का अधिकार प्राप्त है। फिर प्रजातन्त्र की राज्य-प्रणाली में हरेक व्यक्ति को चाहे वह विद्वान् हो या गंवार, एक ही मत (Vote) देने का हक हासिल है। क्या यही न्याय है? इसी तरह व्यापार के क्षेत्र में भी आप देखेंगे कि किराया, पैकिंग, विज्ञापन, टैक्स इत्यादि ऊपरी खर्चों की 'बराबरी' के कारण उपयोगी धंधे तो पिट रहे हैं और 'कम लागत अधिक दाम' वाले व्यर्थ के धंधे फल-फूल रहे हैं। फिर सभी जानते हैं कि वस्तुओं पर करों या उनके मूल्यों में गरीब-अमीर सबके लिये '**बराबर**' की वृद्धि होने पर भी अधिक बोझ स्थिर आय वर्ग (Fixed Income Group) तथा गरीबों पर ही पड़ता है। विभिन्न व्यवसाय होने पर भी कम वेतन वाले श्रमिकों और कर्मचारियों की अन्य व्यवसाय के अधिक वेतन वालों के जितना ही वेतन दिये जाने की मांग के पीछे भी यह '**बराबरी**' का नारा ही होता है। हालांकि सभी व्यवसाय वेतन पर एक जैसे खर्चे को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं।

आध्यात्मिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में तो इस '**बराबरी**' की विचारधारा से घोर अनर्थ हो गया है। आत्मा को अच्छे-बुरे कर्मों के लेप-विक्षेप से मुक्त अथवा निर्लेप बताकर भले-बुरे, महात्मा-पापात्मा सभी को बराबर कर दिया गया है। हालांकि, स्वयं गीता के भगवान् ने '**विनाश** काले विपरीत बुद्धि' मनुष्यात्माओं को '**कौरव सम्प्रदाय**' कहा है। पुनश्च, 'आत्मा सो परमात्मा' कहकर पिता और पुत्र, भगवान् और भक्त के भेद को भी उड़ा दिया गया है, हालांकि परमात्मा को '**ऊंचे से ऊंचा भगवन्त**' कहते हैं। फिर, परमात्मा के कच्छ, मत्स्य, वाराह इत्यादि अवतार बताकर उस 'अयोनि' परमपिता को पशु योनियों में भी ढकेल दिया गया है हालांकि मनुष्य स्वयं ८४ लाख योनियों के चक्कर में फंसने से डरते हैं। (वास्तव में मनुष्यात्मा तो कभी पशु योनियों में पुनर्जन्म लेती ही नहीं है। वह तो सदैव मनुष्य योनि में ही जन्म लेती है।) इतना ही नहीं, परमात्मा को पत्थर-ठिक्कर तथा कण-कण में बतलाकर जड़-चेतन के भेद को भी समाप्त कर दिया गया है। हालांकि परमात्मा '**चैतन्य स्वरूप**' हैं। दूसरे शब्दों में आत्मा-परमात्मा, देवता-दानव, ठिक्कर-ठाकुर, पूज्य-पुजारी, भक्त-भगवान्, मूर्ख-विद्वान्, गुरु-शिष्य, मनुष्य-पशु, जड़-चेतन, सबको '**बराबर**' कर दिया गया है। जो व्यक्ति इनमें भेदभाव को नहीं मानता (या जानता) उसी को आजकल '**ब्रह्म ज्ञानी**' समझा जाता है। अपने विवेक को तिलाञ्जली देकर भले-बुरे, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म सबको एक समान समझने वाला व्यक्ति ही आज के जगत् में 'विशाल हृदय', 'निर्माणचित्त' अथवा 'निरहंकारी' कहलाता है। आज बहुधा मनुष्य परमात्मा को भी '**कल्पना**' का विषय समझते हैं। उनके विचार में परमात्मा को जो जिस रूप में चाहे मान लें, सब ठीक है, क्योंकि यह तो अपनी-अपनी भावना की बात है। इसीलिये उनके अनुसार ईश्वर प्राप्ति के सभी रास्ते ठीक हैं, चाहे वे एक दो से विपरीत ही क्यों न हों! किन्तु, याद रहे कि विश्व में बढ़ी हुई धर्मग्लानि का दायित्व भी उन्हीं लोगों पर आता है जिनकी बहुमत है।

किञ्चित विचार कीजिये कि यदि '**बराबरी**' की विचारधारा को व्यवहारिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्णरूपेण लागू कर दिया जाय तो क्या परिणाम होगा? सरकार में मन्त्री और अर्दली, फौज में सेनापति और सैनिक, न्यायालय में जज और अपराधी, परिवार में अनुभवी बुजुर्ग और अबोध बालक सबको बराबर मान लेने से तो बिल्कुल 'अन्धेर नगरी की टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' वाली बात हो जायेगी और सब चौपट हो जायेगा। वास्तव में गुण के अनुसार जो जैसा है उसे वैसा जानकर व्यवहार करना ही ज्ञान है। यही न्याय है और यही सत्य है। स्वयं गीता के भगवान् ने भी अपनी प्राप्ति के लिये कहा है कि—"मैं (परमात्मा) जो हूं, जैसा हूं, मुझे वैसा जानकर याद करने वाले ही मुझे प्राप्त होते हैं।" यदि पात्र को उसका उचित अधिकार न दिया जाय तो अन्याय होगा,

शेष पृष्ठ २८ पर

उठो...

सम्पूर्णता तुम्हारा आह्वान कर रही है

□ ब्र.कु. सूर्य, माउण्ट आबू

योगी योग के आनन्द में खो गया। अन्तर्ध्यान अवस्था में उसने एक दृश्य देखा। उसके सम्मुख एक तरफ फरिश्ता हाथ में माला लिए खड़ा है और अपनी मधुर मुस्कान से इशारा कर रहा है, आओ, मेरे समीप आओ... यह माला तुम्हारे लिए ही है...।

मैं तुम्हारा ही स्वरूप हूं, जल्दी आओ, मैं तुमसे मिलकर एक होना चाहता हूं... मैं ही तुम्हारी मंजिल हूं। बस कदम बढ़ाओ... ओ योगी, रुके क्यों हो? क्या तुम्हें समय का इंतजार है? नहीं नहीं, यह भूल न करना, ज्यों ही तुम मेरे पास आओगे, समय स्वतः ही समाप्ति की घंटी बजा देगा।

अचानक ही जब उसने दूसरी ओर देखा तो पाया कि एक देवता हाथ में ताज लिए उसकी ओर इशारा कर रहा है। आवाज आ रही थी, आओ तुम्हें यह ताज पहना दूं। योगी पहचान न सका कि वह कौन-सा देवता है।

देवता मुस्कुराया, उसके मुख से मानो फूल झरने लगे। वातावरण खिल उठा। उसने आकर्षक वाणी में कहा—ओ योगी, मैं तुम्हारा ही भविष्य स्वरूप हूं, मैं तुम्हारा कब से इंतजार कर रहा हूं, आओ... इस ताज को स्वीकार करो। तुम्हें ये ताज पहनाकर, मैं तुममें समा जाना चाहता हूं...।

योगी के लिए नितांत मनमोहक दृश्य था यह। छवि देखते ही बनती थी। योगी इसे देखने में ही मग्न रहना चाहता था कि—

अचानक उसका ध्यान भंग हुआ। चलो..., ऐसा सुन्दर समय फिर कभी नहीं आयेगा। चलो, वरण करो अपने अन्तिम स्वरूप का। अब मुझे और इंतजार न कराओ—फरिश्ते की मधुरवाणी सुनाई दी।

योगी के कदम आगे बढ़े... परन्तु चार कदम चलकर वह रुक गया। उसे लगा बहुत दूर है फरिश्ता...।

फरिश्ता हंसने लगा—

क्यों योगी, यह क्या? मैंने सोचा अब तुम गति पकड़ोगे, यह क्या किया तुमने? कहा फरिश्ते ने।

योगी बोला—फरिश्ते, तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। मैं पल भर में तुम्हारे पास आ जाना चाहता हूं, परन्तु, मैं विवश हूं।

फरिश्ते ने मानो मजाक किया—विवश? योगियों के ये बोल? सर्वशक्तिवान् के बच्चे और ये बोल।

मुझे शर्मिंदा न करो। तुम तो बन्धनमुक्त हो, परन्तु मेरे कई बन्धन मुझे आगे नहीं बढ़ने देते। मैं आगे बढ़ता हूं वे फिर मुझे पीछे खींच लेते हैं। मोह के बन्धन बड़े कड़े हैं, मैंने जो कुछ भी आज तक संग्रह किया है, वो सब मेरे लिए बन्धन बन गया है—बोलो मैं क्या करूं—योगी ने कारण बताया।

फरिश्ता बोला—योगी जन्म-जन्म तुम बन्धनों में जकड़े रहे हो, अब तुम इन बन्धनों को पल भर में क्यों नहीं तोड़ देते हो? तुम देख चुके कि इन बन्धनों में दुःख ही दुःख हैं। तुम दुःख को स्वीकार भी कर रहे हो, परन्तु बन्धनों को तोड़ना भी नहीं चाहते।

नहीं फरिश्ते, ऐसी बात नहीं है, मैं तो इन्हें तोड़ना चाहता हूं, परन्तु इन्होंने मुझे मजबूती से पकड़ लिया है, मैं चाहते हुए भी छूट नहीं पाता हूं—योगी ने छूटना चाहा।

फरिश्ता पुनः मुस्काया—मैं तुम्हारे अन्तर्मन के भावों को भी जानता हूं। योगी, बन्धनों ने तुमको नहीं पकड़ा है, तुमने उन्हें पकड़ा है। तुम चाहो तो छूट सकते हो। जल्दी करो। यदि मेरा वरण करना चाहते हो तो एक झटके-से बन्धनों की रस्सियां तोड़ दो।

परन्तु कैसे तोड़ दूं? योगी ने पुनः प्रश्नवाचक आवाज में कहा।

जबकि भगवान् स्वयं बोझ हरने आया है, तो तुम उसे देते क्यों नहीं? क्यों तुम, तेरे-मेरे के जाल बुनकर उसमें फंस गये हो? याद रक्खो, हे योगी, यदि तुमने ये जाल न तोड़ा तो समय जबरदस्ती तुमसे ये जाल तुड़वायेगा। और पता है, तब क्या होगा? तुम्हें असहनीय कष्ट होगा और तब यह माला तुम्हारे गले की नहीं, किसी ओर के गले की शोभा बनेगी,इसलिए मानो मेरा कहना, अन्यथा तुम बहुत पछताओगे।

समय ललकार रहा है, तोड़ो बन्धन एक संकल्प से और आओ, मैं तुम्हारा स्वागत करने को उत्सुक हूं। फरिश्ते ने पुनः दोहराया।

योगी कुछ क्षणों के लिए मग्न हो जाता है, ठीक कहता है फरिश्ता। बन्धन हैं तो कुछ भी नहीं। यों ही मैंने मन के बन्धन बांध लिये हैं। मैं इन्हें साहस से तोड़ दूं।

योगी फिर आगे बढ़ता है। चार कदम चलकर फिर रुक जाता है।

क्यों रुक गये योगी? फरिश्ते ने संकेत किया।

मैं पुनः मजबूर हो गया। बन्धन तोड़े तो अहम् ने प्रवेश कर लिया, अलबेलापन, ईर्ष्या व सूक्ष्म कामनाओं ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। मेरे कदम रुक गये—योगी ने उत्तर दिया।

फरिश्ता बोला, वाह योगी, बड़े-बड़े शत्रुओं को जीत लिया,

छोटों से घबराते हो।

योगी ने स्वीकार किया, हां हैं तो छोटे ही, परन्तु इतने सूक्ष्म कि पता भी नहीं चल पाता, कब ये आक्रमण करते हैं। अचानक के वार को मैं झेल नहीं पाता।

फरिश्ते ने समझाया—योगी, नम्रता का कवच सदा के लिए धारण कर लो, जिम्मेदारी की स्मृति का टोप पहन लो, फिर चाहे कभी भी आक्रमण हो, विजय तुम्हारी ही होगी। मनन के द्वारा अपने मन में शुभ-भावनाओं का बल भरो और आगे बढ़ो, अब समय न गंवाओ, तुम आगे बढ़ो, शत्रु स्वयं ही पीछे हट जायेंगे।

मैं सम्पूर्ण पुरुषार्थ करता हूं। योगी पुनः आगे बढ़ता है परन्तु दो कदम चलकर फिर रुक जाता है।

फिर वही रुकने की आदत—फरिश्ते ने टोका।

योगी बोला—योग में एकाग्रता नहीं होती। इसलिए कदम रुक रहे हैं।

एकाग्रता—वाह, जबकि एक ही तुम्हारा है तो मन कहां भागता है, सब द्वार बन्द कर लो। जरूर कुछ इच्छाएं हैं। इच्छाओं के द्वार से मन बाहर आकर्षित हो रहा है। एक बाप से ही सब-कुछ लेना है, वही मेरा संसार है—यह दृढ़ता धारण करके आगे बढ़ो। ओ योगी, अब रुको नहीं। तुम रुकते हो तो समय रुकता है। तुम रुकते हो तो अनेक आत्माएं रुकती हैं, जरा देखो तुम्हारे पीछे कितना बड़ा झुण्ड है? तुम विश्व के आधार हो, रुको नहीं, चलते रहो, रुकना मृत्यु है, चलना ही जीवन है, बढ़ते रहो, हिम्मत न हारो, विजय तुम्हारी ही है, साहस से कदम बढ़ाओ मेरे पास आकर ही तुम बाप को प्रत्यक्ष कर सकोगे—फरिश्ते ने साहस दिलाया।

इस प्रकार योगी में उमंग, उत्साह आया, उसके मन का बोझ हट गया और उसने तीव्र गति से आगे बढ़ना आरम्भ किया।

फरिश्ता बोला—शाबास, परन्तु तुम्हारे विचार अभी भी हद के हैं, महान् व सूक्ष्म नहीं हुए, तुम्हारे बोल अभी भी स्थूल हैं, इन्हें रॉयल व स्वमान युक्त करो, अन्यथा यह माला तुम्हारे गले में पड़ते ही मुरझा जायेगी। इसलिए सूक्ष्म होकर ही मेरा वरण करो। ऐसा कहकर फरिश्ता लोप हो गया।

तब योगी का ध्यान देवता की ओर गया जो उत्सुकता से उसकी राह देख रहा था।

वह बोला—मुझे न भूलो योगी, लो ये ताज पहनो। आओ, मेरी ओर भी आओ, देखो, विश्व का राज-भाग्य तुम्हारा इंतजार कर रहा है। यह भाग्य केवल एक बार ही प्राप्त होता है। शिवबाबा ने मुझे, तुम्हें ये ताज पहनाने के लिए भेजा है। आओ...

बड़ा आकर्षण था इधर, योगी तीव्रता से उसकी ओर बढ़ा, परन्तु उसे लगा कि मैं साधारण मनुष्य, कैसे जाऊं देवता के पास।

देवता बोला—क्यों मंजिल दूर क्यों दिखाई देने लगी, मैं तो तुम्हारे बिल्कुल ही समीप हूं। आओ...

हे देव, मेरे ये पुराने संस्कार, मुझे तुम दिव्य शरीरधारी के पास आने में हिचकिचाहट पैदा कराते हैं। मुझे अभी तक आवेश भी आता है, मेरी दृष्टि वृत्ति भी मुझे धोखा देती है। मैं क्या करूं? योगी ने असमर्थता प्रकट की।

देवता ने समझाया—हे योगी, तुम तो राजयोगी हो। यह राज-भाग्य तुम्हारा ही है। योगी के तो अंग-अंग शीतल व पवित्र होते हैं, तुम मुझे भूले ही रहते हो। अब मुझे अपने दिव्य स्वरूप को भी स्मृति में रक्खो। मैं तुम्हारा ही सत्यस्वरूप हूं, न मेरे में हिंसा है, न कोई अपवित्रता। आओ मेरा वरण करो।

ठीक कहा देव, मैं अपने वर्तमान को ही देखकर भारी हो जाता हूं। अब मैंने तुम्हें अपने मन में बसा लिया, अब मैं तीव्रता से आ रहा हूं—योगी में जागृति आई।

हां योगी—अब दिव्य संस्कारों का बाना पहनकर तेजी से मेरे पास आ जाओ—कहा देवता ने।

योगी उमंग से आगे बढ़ता है। उसे लगा कि शीघ्र ही वह लक्ष्य को पा लेगा। परन्तु उसे ठोकर लगी, वह गिरा।

देव हंसा—सावधानी से नहीं चले। ठोकर लग गई। तुमने नहीं देखा कि मैं-पन, मान-शान के छोटे-छोटे पत्थर जमीन में गड़े हैं, तुम इन्हें पहचान भी नहीं पाये।

योगी की मानो तीसरी आंख खुली... ओह, मैं आगे बढ़ा तो मान-शान की ठोकर लग गई। अरे भगवान् जबकि स्वयं मुझे मान दे रहा है और मैं मनुष्यों से मान पाने के लिए ठोकरें खा रहा हूं। मेरा देव स्वरूप स्वयं मेरा स्वागत कर रहा है, मैं मनुष्यों से स्वागत चाहता हूं। वाह, मेरा विवेक क्यों धुंधला गया। ठीक है, मैं इन सबको छोड़ता हूं।

वह पुनः उठकर साहस बटोरता है।

देव पुनः बोला—इस ताज को पहनने के लिए निष्काम भाव से विश्व-कल्याण की वृत्ति धारण करो, सबको सुख दो, सबके पालन हार बनो, तभी तो तुम्हें प्रजा विष्णु के रूप में स्वीकार करेगी। याद रखना कहीं विश्व-कल्याण करते-करते पुनः आसक्त न हो जाना।

नहीं, अब मैं सम्पूर्ण वैराग्य धारण करके शीघ्र ही आया कि आया, बस, मैं आया कि आया। योगी तेजी से आगे बढ़ता है, परन्तु पुनः उसके कदम धीमे पड़ गये।

देवता मुस्कुराया—योगी ये ताज विश्व-महाराजन के लिए है, मैंने तो समझा था कि तुम इसके योग्य हो, परन्तु तुममें तो अभी भय है। तुम विघ्नों से घबराते हो, तुम निन्दा से डरते हो, कुछ भी सहन करने का साहस तुममें नहीं है, इस हालत में यह ताज तो तुम्हारे सिर से गिर जायेगा।

योगी बोला—मैं इस ताज को अवश्य धारण करूंगा। इसके लिए ही तो मैंने आज तक अनेक कुर्बानियां की हैं। आज से मैं हर तरह के भय को तिलांजली देता हूं। लो, पहनाओ मुझे ये ताज।

हां, हां, शाबाश! बड़े बहादुर हो तुम, परन्तु उतावले न बनो,

विश्व महाराजन गम्भीर व धैर्य चित्त होंगे। धैर्य न खोओ योगी, ये ताज तुम्हारा ही है। आओ, देवता ने कहा।

योगी धीर गति से आगे बढ़ता है, परन्तु उसके चेहरे पर निराशा के चिन्ह अभी भी दिखाई दे रहे हैं।

देवता पुनः कहने लगा—योगी, अपना चेहरा दिव्य तो बनाओ। मेरा चेहरा देखो, विश्व महाराजन से रॉयल्टी स्पष्ट झलकती है। तुमने ये कैसा रूप धरा है।

योगी को एहसास हुआ, मुझे खेद है देव, सचमुच मैं अपने स्वमान को भूल गया था। स्वमान के बिना हम सिंहासन पर कैसे सुशोभित होंगे। लो, मैं सभी हीन विचारों को त्याग कर अपने स्वमान में स्थित होता हूं।

शाबाश योगी, तुम योग्य हो, देवता अपनी बांहें फैलाकर योगी का आह्वान करता है।

परन्तु न जाने कौन-सी शक्ति योगी को रोक रही है। अब उसके मन में ईश्वरीय महावाक्य गूंजने लगे—

विश्व-महाराजन वही बनता है जो किसी न किसी तरह सभी का सहयोगी बनता है, जिसने दूसरों की स्थिति को महान् बनाने में सहयोग दिया हो, दूसरों की समस्याएं हल करने में सहयोग दिया हो।

विश्व-महाराजन वही बनता है जो सबके दिलों पर राज्य करता हो, जो सम्पूर्ण शक्तिशाली हो।

ये महावाक्य याद आते ही योगी गम्भीर हो गया, मुझसे तो कई नाराज हैं, मैं कैसे विश्व पर राज्य करूंगा।

उसे गम्भीर देख देवता बोला—क्यों गम्भीर हो गये योगी, चलो, मैं ही तुम्हें एक रहस्य बता देता हूं, उसे जल्दी धारण करके मेरे पास पहुंच जाओ।

बड़ी कृपा होगी देव, योगी ने आग्रहपूर्वक कहा।

देव बोला—बहुत रॉयल बनो, अभी तुममें मांगने के संस्कार हैं। तुम बुद्धि रूपी हाथ भी फैलाते हो, दाता बनो, विशालता धारण करो स्वयं के प्रति किसी से कुछ भी संकल्प से भी न मांगो, न स्वीकार करो।

बस समझ गया, धारण करता हूं इस महानता को भी मैं। अब मैं योगबल से अति शक्तिशाली बनकर तुम्हारे पास आ रहा हूं, अब मुझे कोई भी नहीं रोक सकेगा। और इस प्रकार योगी तीव्रता से आगे बढ़ता है।

उसी समय फरिश्ता भी देवता के पास प्रकट होता है।

फरिश्ता और देव दोनों ही उसे आगे बढ़ता देख आनन्दित हो रहे हैं। दोनों ही इशारा कर रहे हैं, चले आओ, चले आओ।

इस मिलन की खुशी में योगी को छोटे-छोटे विघ्न व छोटी-छोटी बातें खेल-सी लग रही हैं और योगयुक्त हुआ योगी दोनों के समीप पहुंच जाता है।

दोनों बारी-बारी से उसका आलिंगन करते हैं।

फिर दोनों, उसके मस्तक पर तिलक लगाते हैं।

फरिश्ता उसके गले में माला पहनाकर देखते ही देखते उसमें समा जाता है।

अब देव उसे ताज पहनाता है।

और वह भी उसमें समा जाता है।

योगी अब दिव्य स्वरूपधारी बन जाता है, जिसमें फरिश्ता व देवता दोनों दिखाई दे रहे हैं... उसके सिर पर ताज है और पीछे प्रभामंडल। □

पृष्ठ २५ का शेष

किन्तु यदि कुपात्र को अनुचित अधिकार दे दिया जाय तो भी न्याय नहीं होगा। कई विचारक समझते हैं कि विभिन्न धर्मों अथवा मतों में '**बराबरी**' की भावना को बढ़ावा देने से उनमें '**एकता**' स्थापित हो जायेगी। परन्तु ऐसी कृत्रिम 'बराबरी' द्वारा लायी जाने वाली 'एकता' क्षणभंगुर ही होगी क्योंकि उसका आधार या तो स्वार्थ हो सकता है या अज्ञान। ऐसी '**बराबरी**' आज नहीं तो कल विरोध (Opposition) अथवा '**टकराव**' ही पैदा करेगी। प्रायः '**बराबरी**' की भावना ही '**फूट**' का कारण बनती है क्योंकि कोई किसी की सुनने को तैयार नहीं होता।

वास्तव में '**एकता**' की स्थापना बराबरी जतलाने वाली अनेकता को समाप्त करके ही हो सकती है। गीता के भगवान् के महावाक्य हैं कि—"जब अति धर्मग्लानि हो जाती है तो मैं अनेक अधर्मों का विनाश करके एक सत्धर्म की पुनःस्थापना करता हूं।" जब तक **अनेकता** है, **एकता** हो नहीं सकती। वर्तमान समय गीता के भगवान् शिव प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा जिस सतयुगी विश्व रूपी स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ की स्थापना कर रहे हैं—उसमें एक धर्म, एक भाषा और श्री लक्ष्मी-श्री नारायण का एक ही चक्रवर्ती स्वराज्य चलता है। उस देव लोक की एकता के लिये प्रसिद्ध है कि वहां पर मनुष्य क्या शेर और गाय भी एक घाट पर जल पीते हैं। वहां के लिये 'इच्छामात्रम् अविद्या' का गायन सिद्ध करता है कि उस कृतयुग में 'यथा राजा रानी तथा 'प्रजा' सभी को अथाह सुख रहता है।' इस उक्ति से ही स्पष्ट है कि वहां भी 'राजा' और 'प्रजा' तो होते ही हैं और उनके सम्मान तथा वैभवों में अन्तर भी होता है परन्तु वहां सभी दैवी संगठन सत्य और न्याय पर आधारित होता है। इसलिये वहां सभी सुख-चैन से रहते हैं। ऐसा अटल, अखण्ड, निर्विघ्न, पवित्रता, सुख, शान्तिमय दैवी स्वराज्य इस पुरानी कलियुगी अनेक धर्मों, भाषाओं और राज्यों वाली सृष्टि के भावी महाभारी विनाश के बाद अब आने ही वाला है।

अतः उस वैकुण्ठ लोक में 'सच्चे स्वर्गवासी' बनने के लिये 'पवित्र और योगी' बनने में ही कल्याण है। □

मुजफ्फर नगर : इमाम अब्दुल्ला बुखारी को ब्र० कु० अलपा बहिन राखी बांधते हुए।

तेजपुर : ब्र० कु० गायत्री भ्राता पुष्पला उपाध्याय जी को राखी बांधते हुए।

मोगा : ब्र० कु० संजीवन एस० डी० एम० भ्राता मेहताब सिंह जी को राखी बांध रही हैं।

छतरपुर : जिला अध्यक्ष भ्राता पांडे जी को आत्म-स्मृति का तिलक देते हुए ब्र० कु० शैलजा बहिन।

रायपुर : मध्य प्रदेश के कृषि मंत्री भ्राता विजय गुरु जी को आत्म-स्मृति का तिलक देती हुई ब्र० कु० कमला बहिन।

नई दिल्ली : भ्राता एम० के त्रिपाठी, राष्ट्रीय युवा नेता को ब्र० कु० सुनीता राखी बांधते हुए।

मुजफ्फर नगर : ब्र० कु० संतोष भ्राता चौ० टिकैट सिंह (अध्यक्ष भाकियू) को राखी बांधते हुए।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः"

□ ब्र.कु. आत्म प्रकाश, आबू पर्वत

वर्तमान युग में मनुष्य जोड़-तोड़ की उधेड़बुन, आसपास के शोरगुल और जीने की आपाधापी में इतना व्यस्त हो गया है कि जीवित होते भी जीवन का अस्तित्व भुला हुआ सा प्रतीत होता है। अनेक प्रकार के दुःखों के काले घने बादल उसके ऊपर मंडरा रहे हैं, जिससे वह अंधकारमय दुःखालय में भय कंपित होकर अपनी मंजिल से बेगाना हुआ है। जैसे कि वह दुःखों के सागर में गोते खा-खाकर हिम्मत हारकर निराशावादी बन चुका है।

वास्तव में ये सुख-दुःख का खेल है। इस बेहद खेल में किसी पर खुशियों की बौछार हो रही है तो किसी पर कष्ट और संकटों के पहाड़ और दुःखों की मार! क्योंकि कर्मों की गुह्य-गति बड़ी ही गहन है। मनुष्य को अपनी जिंदगी में किये गये कर्मों से खुशी होती है तो बुरे कर्मों से दुःख और अफसोस भी। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसका जीवन सदा सुखी रहे। सुख को पाने के लिए हर मनुष्य प्रयत्नशील है। हर मनुष्य जी तोड़ मेहनत इस बात की कर रहा है कि उसको सुख मिले।

लेकिन विडम्बना की बात है कि आज मनुष्य ने अनेक प्रकार के अभूतपूर्व साधनों को अपने दुःखों की निवृत्ति के लिए एकत्रित कर लिए हैं फिर भी वह अत्यन्त दयनीय दशा में पहुंच चुका है। उसके दुःख दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। परन्तु क्या कभी हमने शान्त-चित्त होकर विचार किया है कि इसका कारण क्या है? जिसका निवारण करने से हम सदा के लिए सुखी बन जाएं।

देह-अभिमान ही सभी दुःखों की जड़ है

संसार में जितने भी प्रकार के दुःख हैं उन सभी का कारण है छः विकार जिन्हें 'षट-रिपु' कहा जाता है। आज हर मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और सुस्ती में से कोई न कोई विकार थोड़ा-बहुत अवश्य है। और इन छः विकारों को जन्म देने वाला बीज है देह-अभिमान। इन विकारों रूपी कांटों से ही हम जन्म-जन्मांतर एक-दो को दुःख देते आये हैं।

"बबुलनाथ" आये हैं कांटों से फूल बनाने

परमात्मा शिव को बबुलनाथ भी कहते हैं क्योंकि वे हम आत्माओं को कांटों से फूल बनाते हैं। परमात्मा शिव कहते हैं—हे वत्सों, सदा के लिए सम्पूर्ण सुख और शान्ति चाहते हो तो स्वयं को आत्मा निश्चय कर सब देहधारियों की तरफ से मन की आसक्ति हटाकर एक मुझ ज्योतिस्वरूप परमात्मा शिव को याद करो। इस सहज युक्ति से तुम्हारे अंदर जो विकार रूपी कांटें हैं वह दिव्यगुण रूपी फूलों में परिवर्तन हो जायेंगे, जिससे यह संसार रूहानी फूलों का बगीचा बन जाएगा। तुम सभी आत्माएं मुझ सुख के सागर के बच्चे सच्चे सुखदेव हो।

"मैं सुखदेव हूं"

सदा सर्व सुख प्रदान करने के लिए "मैं सुख के सागर परमपिता परमात्मा शिव का बच्चा सुखदेव हूं" ये श्रेष्ठ धारणा बनाएं। सुख देना ही मेरा स्वधर्म है, मुझे परमात्मा ने प्राणीमात्र को सुख देने के लिए ही इस संसार में भेजा है। इस महान् कार्य को करने के लिए निम्नलिखित ५ बातों को अपने जीवन का अंग बनाएं।

(१) मुझे नयनों से प्रेम की वर्षा करनी है

सदा यह समझें कि प्यार के सागर से निकली हुई मैं चैतन्य प्रेम की गंगा हूं। एक पिता परमात्मा की सन्तान होने हेतु हम सभी आपस में भाई-भाई हैं, स्नेह के अनोखे धागे से यह बेहद परिवार बंधा हुआ है। इसलिए हर आत्मा पर निश्छल तथा निर्मल भाव से प्रेम ही बरसाते रहना है। यही निस्वार्थ प्यार उन्हें दुःख का भान भुलाकर सुख का अनुभव कराएगा।

(२) मुझे मन में सदा शुभ भावनाएं रखनी हैं

हम सदा शुभचिन्तक बन सभी के प्रति शुभ ही सोचें जिससे दूसरों को सुख का अनुभव हो, क्योंकि जिस प्रकार के संकल्प अपने मन में चलते हैं, वह दूसरों के मन पर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं चाहे वो शुभ हों या अशुभ। इसलिए सबका सदा कल्याण हो, यह बेहद की भावना हमारे मन में हो। हमारी शुभ भावनाएं दूसरों को विकास के लिए प्रोत्साहित करती हैं, दूसरों को आगे बढ़ाती हैं, प्रगति की प्रेरणा देती हैं, सहनशक्ति तथा साहस को बढ़ाने का आदेश देती हैं। वास्तव में हृदय की पवित्रता और मानवीय प्रेम जैसी सद्भावनाएं ही मनुष्य के स्तर को ऊंचा उठाती हैं।

इसके विपरीत, दूसरों को आगे बढ़ते देख ईर्ष्या, द्वेष करने से उनको सूक्ष्म दुःख पहुंचता है, हमारे व्यर्थ संकल्प उनकी उन्नति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करते हैं।

(३) मुझे सदा मुख से मीठा बोलना है

महान् आत्माओं के वाणी में शहद जैसी मिठास होती है। उनकी भाषा इतनी सरल व कोमल होती है, जैसे फूल झरते हैं। उनके शब्द चुने हुए कोमल, सुरुचिपूर्ण होते हैं। बोलने का लहजा इतना आकर्षक होता है, जो भी सुनता है, मन्त्र मुग्ध हो जाता है। कनरस के रूप में सुख अनुभव करते हैं। उनका एक-एक शब्द इतना अर्थपूर्ण, भावपूर्ण एवं प्रेरणा प्रद होता है, सुनने वालों को ऐसा लगता है कि हमारी शक्तियां बढ़ गईं। ऐसे ही हमें सदा अमूल्य मीठे बोल बोलने का अभ्यास हो।

(४) मुझे हर कर्म से सुख प्रदान करना है

जब हम कर्मयोगी बनकर अर्थात् सुख सागर पिता की याद में रहकर कर्म करते हैं तो हर कर्म सुखदाई होता है। कर्म करते समय हर्षित मुख रहना आवश्यक है जिससे हम अनेक आत्माओं को

सुख बांटने के निमित्त बनते हैं। जिससे सर्वत्र सुखद वातावरण बना रहता है। प्रायः यह अनुभव किया गया है कि हम कर्म करते हुए जितना अधिक ईश्वरीय याद का अभ्यास करते हैं, उतना ही अधिक हमारी मानसिक एकाग्रता का विकास होता है। और यह तो सत्य है कि जहां एकाग्रता होगी वहां कर्मों में कुशलता होगी। इसीलिए कहा गया है—***योगः कर्मसु कौशलम्।***

(५) मुझे सम्बंध-संपर्क से सुख देना है

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हमारी विचार तरंगों से हमारे सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं, अतः हमें अपने विचारों पर सदैव ध्यान रखना है। यदि हमारे सकारात्मक विचार होंगे तो हमारे सम्बंध संपर्क में आने वाले व्यक्ति भी निर्माणात्मक प्रवृत्तियों में रत रहने को प्रेरित होंगे। जिस प्रकार महात्मा गांधी का एक ही दृढ़ संकल्प था 'आज़ादी' इसी कारण उनके संपर्क में आने वालों ने भी इसी संकल्प में टिके रहने का निश्चय किया और एक दिन ऐसा भी आया जब सफलता ने उनके चरण चूमे। इसी प्रकार शिवबाबा ने भी हमें यह मन्त्र पक्का कराया है कि बच्चे अपकारी पर भी उपकार करना है इसके लिए शुभ भावना और श्रेष्ठ कामना को कभी न भूलो, जिससे परोक्ष, अपरोक्ष में संपर्क में आने वालों को सुख मिलेगा।

• अतीन्द्रिय सुख में झूलने वाला सदा सुख बांटता है

जब इंद्रियों के भान से परे आत्माभिमान में स्थित होकर प्रियतम परमात्मा की याद में खो जाते हैं तो अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। ऐसी आत्माएं अपनी अलौकिक मस्ती का रूहानी रंग सभी पर लगाते हैं, इसलिए उनका संग सभी के मन को लुभाता है। वे सदा सुख के अनोखे झूले में स्वयं के साथ दूसरों को भी बिठाकर झुलाते हैं और इस पुरानी दुःखदाई दुनिया को भुला देते हैं। सदा याद रखें-*"जब देह का भान भूलता, तब यह अनोखा झूला मिलता"*

• सूखा व्यक्ति सुख नहीं दे सकता

जैसे सूखा पेड़ सूखा होने के कारण छांव तथा फल द्वारा किसी को सुख नहीं दे सकता। इसी प्रकार जिसके जीवन में दिव्यगुणों की हरियाली नहीं होगी अर्थात् जिसका जीवन सूखा होगा वह अपने रुखे-सूखे व्यवहार से दूसरों को सुख नहीं दे सकेगा। इसलिए सुखदेव बनने के लिए जीवन को दिव्यगुणों से हरा-भरा करने का पुरुषार्थ नितान्त आवश्यक है। अपने जीवन रूपी पेड़ को ईश्वरीय ज्ञान की वर्षा और योगाभ्यास से शक्ति रूपी खाद प्रतिदिन देना ज़रूरी है। जिससे यह पेड़ सदा दिव्य फूलों और फलों से लदा रहेगा और अनेक आत्माओं को सुख देने की बेहद सेवा कर सकेगा।

• भूखा व्यक्ति कभी सुख नहीं दे सकता

जिसको किसी भी प्रकार के नाम, मान, शान पाने की भूख होगी वह औरों की भूख नहीं मिटा सकता, क्योंकि भूखा व्यक्ति आसक्ति के कारण महादानी नहीं बनता है। उसका लोभी और कंजूस स्वभाव उसे दूसरों को खजाने देने को प्रवृत्त नहीं करता। ऐसा व्यक्ति दूसरों के आशीर्वाद का पात्र नहीं बनता है। इसलिए 'इच्छा मात्रम् अविद्या' का पाठ पक्का करना आवश्यक है तब ही स्वयं संतुष्ट रहकर औरों को सुख देने की भावना जागृत होगी।

• हम किसी से दुःख भी न लें

किसी दुःखी और पीड़ित व्यक्ति को देखकर दुःखी होना भी दुःख लेना है, यह भी यथार्थ नहीं है। जब हम दुःखी को देखकर स्वयं भी उस प्रवाह में आते हैं, उससे पहले तो अपने ही मन में दुःख की लहर उत्पन्न होती और वह लहर उस दुःखी व्यक्ति के पास जाकर उसे और भी ज्यादा दुःखी करती है। दूसरी बात, वह दुःख की बात अगर किसी को बतायेंगे तो वह सुनने वाला व्यक्ति भी दुःखी हो जाएगा।

ऐसी परिस्थिति में सदा साक्षी, शान्त-चित्त और सुख में रमण करते हुए उस आत्मा को सुखदाई संकल्पों से योगदान देकर उसका दुःख हल्का कर सकते हैं या दग्ध कर सकते हैं।

• दुःख देने वाला दुःखी होकर मरता है

सुख के सागर के बच्चे सुखदेव कभी न किसी को दुःख दे सकते हैं, न ही दुःख की लहर फैला सकते हैं। दूसरे को दुःख पहुंचाने का सूक्ष्म संकल्प उठाने वाले मनुष्य के अपने ही मन में पहले दुःख का अनुभव होता है और बाद में भी दुःख देने के कारण, उसे दुःख ही भोगना पड़ता है।

दुःख देने वाले व्यक्ति को अंत में शरीर छोड़ते समय उसके किये हुए पाप-कर्म भूत बनकर डराने आते हैं जिससे वह भयावह दुःखद स्थिति में देह त्याग देता है, जिससे उसकी दुर्गति होती है।

• सदा सर्व को सुख देना सम्पूर्णता की समीपता है

वास्तव में दुःख देना अपवित्रता की निशानी है और सदा सर्व को सुख देते रहना यह सम्पूर्ण पवित्रता की निशानी है। वर्तमान समय के पुरुषार्थ से कर्मेन्द्रियां कमल फूल समान पवित्र बनती हैं जिससे भविष्य में कमल नयन, कमल मुख... आदि के रूप में गायन होता है। जब आत्मा सर्वशक्तियों के और गुणों के खजाने से फुल (Full) होती है तो सच्चा फूल (Flower) बनती है, वह माया को फूल (Fool) बनाकर मायाजीत बनती है। ऐसी सम्पूर्ण निर्विकारी आत्मा सदा सर्व को सुख देती है, यही है सम्पूर्णता के समीपता की निशानी। ऐसी आत्मा ही देवपद को प्राप्त करती है। आवश्यकता है सर्वशक्तिवान् परमपिता शिव परमात्मा की श्रीमत का पूर्ण रूप से अनुकरण करने की। आओ तो हम आज से यह अटल धारणा बना लें कि हम स्वयं सुख के सागर परमात्मा की सन्तान हैं और स्वयं सुखदेव बनकर सर्व को सुख बांटेंगे। □

"सुख-शान्ति की खोज"

ब्र.कु. विनोद बहन, कृष्णा नगर, दिल्ली

आज जिन भौतिक साधनों द्वारा मनुष्य सुख का अनुभव करता है, कल वही भौतिक साधन दुःख और अशान्ति का कारण बन जाते हैं। तो हमें सुख-शान्ति की निरंतर अनुभूति करने के लिए आध्यात्मिकता को भी अपने जीवन में लाना होगा। भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

जीवन में किसी भी चीज की कमी होना ही दुःख और अशान्ति का कारण है। इसलिए आज का मानव सर्व भौतिक सुखों की प्राप्ति के होते हुए भी दुःखी और अशान्त है और शान्ति की तलाश में है। हम विचार करें कि मानव जीवन में सर्व भौतिक सुखों के होने पर भी कौनसी और क्या कमी रह जाती है, जिस कारण हम सदैव सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर पाते?

विचार करने पर हमें अनुभव होगा कि मानव जीवन में भौतिक सुखों के साथ-साथ आध्यात्मिक सुखों की कमी होने के कारण उसे सदैव सुख की अनुभूति नहीं होती। हालांकि सभी मनुष्य भजन, पूजन, संकीर्त्तन आदि करके भगवान् को याद करते और ढूंढ़ते रहते लेकिन जब तक हमें यह पता न हो कि जिस वस्तु को या प्राणी को हम ढूंढ़ रहे हैं, वह कैसा है, उसका रूप, आकार, गुण क्या हैं, वह कहां रहता है, क्या करता है, क्या नाम है, तब तक यदि हम सारा जीवन भी उसको ढूंढ़ने में लगा दें तब भी हम उसको पा नहीं सकते, भले ही वह हमारे सामने ही क्यों न हो।

तो पहले तो हम यह जानें कि परमात्मा कौन है? क्या है और कैसा है? जिसको न जानने के कारण ही भौतिक सुखों के होते हुए भी मनुष्य दुःख का अनुभव करता है।

सभी कहते हैं परमपिता अर्थात् परम + आत्मा। और मनुष्य क्या है? आत्मा और शरीर से बना एक जीव आत्मा अर्थात् जीव + आत्मा। तो आत्मा क्या है? एक चैतन्य ज्योतिर्बिन्दु। आत्मा अविनाशी है। परमात्मा क्या है? वह भी चैतन्य ज्योतिर्बिन्दु है लेकिन वह परम है अर्थात् संपूर्ण है। सब आत्माओं में सदा संपूर्ण आत्मा अथवा आत्माओं में परम-आत्मा है जिसके परम होने के कारण उसे परमपिता परम-आत्मा कहा जाता है।

परमात्मा के गुण हैं—परमात्मा ज्ञान का सागर है, शक्ति का सागर है, सुख का सागर है, आनंद का सागर है, प्रेम का सागर है, सर्वशक्तिवान् है। कल्याणकारी शिव नाम है उसका। वह मनुष्य सृष्टि का रचयिता है, बीज रूप है।

तो परमपिता परमात्मा जो ज्ञान, सुख, शान्ति, प्रेम, आनंद का सागर है, संपूर्ण है, वह हमारा परमपिता है और हम उसके बच्चे हैं तो हम भी क्यों नहीं संपूर्ण बन सकते? बन सकते हैं, पिता सागर और बच्चे सुख-शान्ति के प्यासे हों, ऐसा हो नहीं सकता।

तो हम यदि ज्ञान के सागर में, सुख के सागर में, शान्ति के सागर में, प्रेम व आनंद के सागर में डुबकी लगाते रहें तो हम सुख और शान्ति का पूर्ण आनंद ले सकते हैं और सदाकाल एवं निरंतर ले सकते हैं। □

पृष्ठ ८ का शेष

उनका जीवन पतित व दुःखी है, उन्हें सुख नहीं भास रहा है, तुम भगवान् के बच्चे उन पर रहम करो, उन्हें प्रकाश दो, उन्हें ज्ञान का तीसरा नेत्र दो।

तो यदि भटकते मनुष्यों को देखकर हमारे मन में रहम की भावना नहीं जागती तो हमारे ज्ञान का क्या लाभ? हमें तो प्रकृति के तत्वों पर भी रहम करना है अर्थात् उन्हें भी पावन बनाना है। इससे पूर्व हमें स्वयं पर रहम करना है अर्थात् स्वयं की श्रेष्ठ स्थिति बनानी है। हमें दूसरों के रहम पर नहीं जीना है, बल्कि रहमदिल बनकर सभी की मदद करनी है। कहावत है जो स्वयं पर रहम नहीं करता वह भला दूसरों पर क्या रहम करेगा?

तो हम रहमदिल बाप के रहमदिल बच्चे हैं। जैसे भगवान् ने हम पर रहम किया है, हम दूसरों पर रहम करें। रहमदिल आत्मायें ही प्रजा पालक बन सकेंगी और ऐसी आत्मायें ही भविष्य में विश्व की बागडोर सम्भालेंगी। □

पृष्ठ ७ का शेष

सृष्टि में देवपद (जिसको ही अमरपद कहते हैं) प्राप्त कर लेवें। अब हम आपको यह शुभ समाचार भी सुनाते हैं कि वर्तमान समय अति धर्मग्लानि के समय परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा पुनः वही '**रुद्र-गीता-ज्ञान-यज्ञ**' रचा हुआ है जिसका ही दूसरा नाम '**प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय**' है। □

जगदीश चन्द्र, मुख्य सम्पादक, ब्र० कु० आत्मप्रकाश, सम्पादक, बी ९/१९ कृष्णा नगर, दिल्ली द्वारा सम्पादन तथा ओमशान्ति प्रैस, कृष्णा नगर दिल्ली-५१ से छपवाया Regd. No. 10563/65-D.(E)-70. Laser Typesett by Samira Graphics, Krishna Nagar Delhi-51 Ph: 2248751.